बापू —
प्रेरणादायक कुछ प्रसंग

वियोगी हरि

देख लिया। जैसे-तैसे एक-दो जगह से कुछ कर्ज लेकर चार अंक और निकाले, फिरभी पत्र आगे चला नहीं। 'पतित-बन्धु' एक वर्ष के भीतरही अकाल-मृत्यु का ग्रास बन गया।

साहित्य-सेवा के साथ-साथ हरिजन-सेवा . अपने वर्तन से ज्यादा प्रचार

१९३२ के अगस्त मे पन्ना से मैं फिर इलाहाबाद आगया, और जमुना-पार अपने छह वर्ष पहले के छोड़े हुए हिन्दी-विद्यापीठ में जाकर बैठ गया। ११ अक्तूबर, १९३२ के अन्त में यरवडा-जेल में गांधीजी से मिल आने के बाद मैंने एक पत्र में उनको लिखा, "श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टण्डन चाहते हैं कि मैं साहित्य की सेवा करूँ। किन्तु मेरा मन बार-बार दलितजनों की सेवा करने की ओर उड़ रहा है, और ऐसा लगता है कि 'पतित-बन्धु' पत्र को, आवश्यक साधन किसी तरह जुटा कर, फिरसे निकालूँ।" इसपर पूज्य बापूजी ने ११ नवम्बर, १९३२ को मुझे नीचे के पत्र में यह सलाह दी थी :

भाई वियोगी हरि,

पत्र मिला। आनन्द हुआ। मुझे तो टंडनजी की सूचना सबसे अच्छी लगती है। साहित्य और भाषा-सेवा

4/५८

तुम्हारा कार्य-क्षेत्र है और यह करते हुए हरिजन-सेवाभी हो तो उसमें सब कुछ आ जाता है। 'पतित-बन्धु' के पुनरुद्धार करने की कोई आवश्यकता मैं नहीं देखता हूँ। आज अपने वतन से ज्यादा प्रचार हो सकता है। अखबार तो बहुत निकलते हैं, उनमें तुम्हारे ऐसे लेखों को हमेशा स्थान मिलताही रहेगा। मिलना चाहो तो अवश्य आ सकते हो।

तुम्हारा
मोहनदास

हरिजन-सेवक-संघ की स्थापना १९३२ के अक्तूबर मास के आरम्भ में हुई थी। मैं दो महीने बाद संघ के अध्यक्ष श्रीघनश्यामदास बिड़ला के बुलाने पर प्रयाग से दिल्ली आगया था। काम मुझे सौंपा गया था 'हरिजन-सेवक' पत्र के सम्पादन का। किन्तु डिक्लेरेशन काफी देरी से मिला, इसलिए पत्र का पहला अंक २३ फरवरी, १९३३ को प्रकाशित हो सका। इस बीच में अखबारों में से हरिजन-आंदोलनसंबंधी समाचार ले-लेकर संक्षिप्त साप्ताहिक रिपोर्ट, पूज्य ठक्कर बापा के आदेश से, मैं तैयार किया करता था।

सम्पादन-कला की परीक्षा

'हरिजन-सेवक' के पहले अंक का सम्पादन मैंने

अपनी समझ के अनुसार काफी परिश्रम से किया था। तीन-चार अच्छे लेखकों के लेख उसमें दिये थे और तीन-चार सम्पादकीय टिप्पणियाँभी। जिसे मैं साहित्य समझता था, उसीकी अभिरुचि से सम्पादन किया था। बापूजीने जब उसे देखा, तो यरवडा-जेल से उनका तार आया, और दूसरे दिन पत्रभी, इस आशय का कि उनको वह पसन्द नहीं आया। मुझे आश्चर्य हुआ और कुछ दुःखभी। बापू ने पत्र के प्रकाशित होने से पहलेभी मुझे लिखा था .

> **जितने अंगरेजी 'हरिजन' के अंक निकल चुके हैं, उनमें से जो चाहिए सो लेलो। उनमें से चुनाव करने में, और जो लिया जायगा, उसमें से योग्य हिस्सा का अनुवाद करने में तुम्हारी कला की परीक्षा होगी। हिन्दी का अंक मेरे हाथ में आने के बाद मैं देख लूँगा कि कुछ और लिखने की आवश्यकता है या नहीं। हाँ, एक बात है यदि मुझे कुछ प्रश्न भेजोगे तो उनमें से किसी आवश्यक वस्तु पर लिख भेजूँगा।**
>
> **बापू के आशीर्वा**

बापू के इस निर्देश पर पूरा ध्यान न देकर उनके एक-दो लेखों के ही हिन्दी-अनुवाद मैंने पहले अंक में दिये थे। जिन मौलिक लेखों को मैंने दिया था, वे मेरी दृष्टि

से तो सुन्दर थे पर वे प्रत्यक्ष निरीक्षण और अनुभव के आधार पर नही लिखे गये थे, यह बात बाद को मेरी समझ मे आई।

अनुवाद का काम इस से पहले मैंने किया नहीं था। जब जरा ध्यान दिया, तो देखा कि अनुवाद करना तो कभी-कभी मौलिक लेख लिखने से भी कहीं अधिक कठिन होता है। जबतक दोनों भाषाओ पर एकसमान अधिकार और उस विषय में यथेष्ट प्रवेश न हो, तबतक अनुवाद सही और सरस बन नहीं सकता। अपने आप को मैंने इस क्षेत्र मे कच्चा पाया।

'हरिजन-सेवक' का पहला अंक संतोष न दे सका

पहलेही अंक द्वारा बापू को संतोष न दिला सकने की अपनी इस असफलता से मुझे लगा कि अपनी अयोग्यता का यदि मुझे कुछभी पहले से भान होता, तो 'हरिजन-सेवक' के सम्पादन की जिम्मेदारी मैं अपने हाथ में न लेता। पर अब इस काम को छोड़तेभी नहीं बनता था, और छोड़ना चाहताभी नहीं था। गांधीजी के पत्र का सम्पादक होना कोई मामूली सम्मान की चीज नहीं थी। सम्पादन की जिम्मेदारी लेने की बात जब बापूजीको मैंने लिखी थी, तब उन्होंने मुझे प्रोत्साहनभी दिया था। वह प्रोत्साहन आज मेरी आँखो के सामने आ गया।

२२ दिसम्बर, १९३२ के पत्र में बापूने लिखा था :

भाई वियोगी हरि

यह (हरिजन-सेवक के सम्पादन की) सेवा (तुमने) लेली, इससे मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मैंने (अपना हिंदी का) लेख घनश्यामदासजी के लिखने पर भेज दिया था। सिद्धान्त-वाक्य 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' कैसा लगता है? 'हरिजन-सेवक' में प्रत्येक प्रान्त की साप्ताहिक प्रवृत्ति का सच्चा और संक्षिप्त वर्णनभी होना चाहिए। अच्छे शास्त्रियोंका अभिप्रायभी यथासम्भव होने से अच्छा होगा।

बापु के आशीर्वाद

अनुवाद कैसा हो : उसकी कला

पहले तो, यरवडा-जेल से और बाद में वर्धा से बापू के अंग्रेजी और गुजराती के लेख कुछ देरी से आते थे, फिर जल्दी में यथार्थ अनुवादभी नहीं हो पाता था। हमेशा मुसीबत सामने रहती थी। मैंने बापू को तीन-चार बार लिखा कि अच्छा हो, यदि एक-दो लेखों के अनुवाद सीधे उन्हींके पास से आ जाया करें। बापू मेरी मुसीबत को समझ गये। उनके स्नेह का पार नहीं था। मुझे वह ठोंक-पीटकर संतोष देनेलायक सम्पादक बनाना चाहते थे। अत: २७ मार्च, १९३३ के पत्र में उन्होंने लिखा :

6/36

भाई वियोगी हरि,

यहाँ से देनेलायक सब चीजों का अनुवाद यहींसे भेजनेकी कोशिश करूँगा। गुजराती और अंग्रेजी दोनों में से अनुवाद यहींसे जायेंगे, बाक़ी का वहांसे कर लेना। हाँ, हमारी अपूर्ण कच्ची हिंदी तुम्हारे को दुरुस्त करना होगा। उसपर मेहनत लेकर उसे अच्छा बनाना। तुम्हारी मुसीबत मैं समझ गया। यहांसे जितनी सहाय हो सकती है, देता रहूँगा।

बापु के आशीर्वाद

बापू के कुछ लेखों का अनुवाद अब वहींसे आ जाता था। पर यह क्रम कोई डेढ़ सालही चला। भूलें कई लेखों के अनुवाद में रह ही जाती थीं—मेरे अनुवाद में और दूसरों के किये अनुवाद में भी। स्वभावतः इससे दुःख होता था। बापू का ध्यान पुनः इस कठिनाई पर दिलाया गया। अनुवाद यथार्थ हो और सुन्दरभी इसकी कला को वे जानते थे। दूसरों के दोष निकालना, फिरभी, बापू को प्रिय नहीं था, क्योंकि उनकी कठिनाई से वे अपरिचित नहीं थे। वर्धा से २४ अगस्त, १९३५ को बापूने लिखा :

भाई वियोगी हरि,

मुझे स्मरण है कि महादेव ने कहा था कि 'हरिजन-

बन्धु' में और 'हरिजन-सेवक' में ग़लतियाँ आ जाती हैं। कैसा अच्छा होता यदि अनुवाद यहाँसे भेजा जा सकता। महादेव ने गुजराती के अनवाद का आरंभभी कर दिया है। ग़लतियाँ हो जाती हैं,इसमें दोष किसीका नहीं निकाल सकते हैं। अनुवाद बहुत कठिन कार्य है। दो भाषाओं पर एकसाथ क़ाबू रहता है, तबहीं अच्छा अनुवाद हो सकता है। मुझे खेद के साथ कबूल करना पड़ेगा कि मैं तीन में से एक भी अखबार नहीं पढ़ पाता हूँ। 'हरिजन' की सब वस्तु मेरी दृष्टि से गुजरती है इसलिए उसमें क्या रहता है मैं जानता रहता हूँ। लेकिन दूसरे दो में क्या आता है वह नहीं जानता। महादेव कुछ पढ़ लेता है सही। लेकिन हमसब दया के पात्र हैं। काम का बोझ इतना रहता है कि जितना हो सकता है उससे ईश्वर का अनुग्रह मानकर संतुष्ट रहते हैं।

बापु के आशीर्वाद

लेख कैसे हों ?

'हरिजन-सेवक' में हिंदी-लेखकों के मौलिक लेख किस प्रकार के आने चाहिए, इसकाभी उल्लेख बापूने अपने एक पत्र में, जो यरवडा-जेल से मुझे ६ मार्च १९३३ को लिखा था, किया था। उस पत्र में बहुत स्पष्ट निर्देश उन्होंने किया था .

भाई वियोगी हरि,

हिंदी-लेखकों के लेख 'हरिजन-सेवक' में क्यों न रहें ? लेकिन वे निबन्ध रूप में नहीं। या तो कोई सनातनी की सम्मति हो, अथवा सनातनी की कोई दलील का उत्तर, अथवा सेवकों की कठिनाई का इलाज, अथवा हरिजनों की आपत्ति का वर्णन, अर्थात् सब लेख प्रस्तुत और साम्प्रत मुसीबतों को हल करने की दृष्टि से लिखे हुए होने चाहिए।

बापू के आशीर्वाद

धर्म-कार्य में दौड़-धूप क्या ? अस्पृश्यता-निवारण और धार्मिक कार्य

हरिजन-आन्दोलन के पक्ष तथा विपक्ष में रोजही इन दिनों बापू को लोग तरह-तरह के पत्र लिखा करते थे। उनके प्रश्नों के उत्तर 'हरिजन' तथा 'हरिजन-बन्धु' और 'हरिजन-सेवक' में बापू देते थे। चार या पाँच प्रश्न ...भी ...जे थे। एक पत्र में मैंने लिखा था कि अस्पृश्यता ... का कार्य कुछ शिथिल-सा हुआ लगता है, ... कि प्रचार-कार्य की गति मंद पड़ गई है। मंदिर- ... के पक्ष में मत-गणना कराने के बारे में भी मैंने ... था। बापू ने मेरे उस पत्र का उत्तर ...१ अप्रेल, १९३३ को इस प्रकार दिया था

भाई वियोगी हरि,

तुम्हारा पत्र मिला है। साथ में पुराने लेखभी मिले, वापस किये जायेंगे।

प्रचार-कार्य की दौड़-धूप बन्द होने से अस्पृश्यता-निवारण-कार्य शिथिल हुआ लगता है यह मुझे प्रिय है। यह कार्य दौड़-धूप का नहीं है। धर्म-कार्य में दौड़-धूप क्या? शांति से जितना होगा वही सच्चा और पक्का होगा।

मत-गणना का कार्य होना आवश्यक समझता हूँ। परंतु वह कार्य सच्चाई से होने में मुझको कुछ सन्देह है। ठक्कर बापा और घनश्यामदास से इसकी चर्चा करो, और तत्पश्चात् मुझे लिखो। इस कार्य की जिम्मेवारी-भी लेनेवाला कोई धार्मिक व्यक्ति होना चाहिए। ऐसा व्यक्ति कोई तुम्हारी नजर में है?

जिन मंदिरों में हरिजन न जा सकें उनमें सेवकभी न जायें यह बात मुझे प्रिय है। उपरोक्त कार्य से यह ज्यादा कठिन है, इसमें कुछ शान्ति-भंग होने का भी डर है। यह कार्य शुरू करें उसके पहले हमारे लोगों में कुछ प्रचार भी करना चाहिए। इस बारे में भी चर्चा करके मुझे दोबारा लिखो, और इसका प्रबन्ध करनेवाला कौन हो सकता है? पत्रों में मैं लिखना शुरू करदूँ उसके पहले

हमारे सामने कुछ चित्र खड़ा होना चाहिए।

बापु के आशीर्वाद

हरिजन-कार्य, विशेषतः अस्पृश्यता-निवारण कार्य, धार्मिक व्यक्तियों के द्वाराही सफल हो सकता है, यह बापू के ऊपर के पत्र से स्पष्ट हो जाता है। वे मानते थे कि अस्पृश्यता निश्चित रूप से अधर्म है, इसलिए सच्ची धर्म-भावना अर्थात् सत्य और अहिंसा के द्वाराही इस अधर्म का अन्त हो सकता है। बापू का यहभी स्पष्ट मत था कि धर्म-संशोधन के क्षेत्र में मत-गणना उस 'विधि' से और वैसे 'प्रचार' से नहीं होनी चाहिए, जिस विधि और जिस प्रचार का किसी राजनैतिक हेतु के लिए उपयोग किया जाता है।

'निन्दक बाबा बीर हमारा'

उन दिनों तथाकथित सनातनियों की ओर से, उनकी वाणी तथा लेखनी से, बापू की कभी-कभी कटु से भी कटु टीका की जाती थी, और गालियोंतक का प्रयोग किया जाता था। एक गंदी टीका की कतरन एक अखबार से लेकर मैंने बापू को भेजी, और उनको लिखा कि उस आलोचना का मुहँतोड़ जवाब मैं देना चाहता हूँ। बापू को ऐसा करना कहाँ पसंद था? तीन-चार पंक्तियों के पत्र में अहिंसा की महिमा को स्पष्ट करते हुए

बापू ने ३० सितम्बर, १९३० को लिखा :

भाई वियोगी हरि,

तुम्हारा खत मिला। 'निन्दक बाबा बीर हमारा' – निन्दा करनेवालों से हमारे भड़कने का कोई सबब नहीं है। स्तुति करनेवालों से डरें।

बापु के आशीर्वाद

कोई पांच बरस बाद मैंने बापू से निवेदन किया: "हरिजन-सेवक के ग्राहक बढ़ें, तो कैसे बढ़ें? यरवडा-जेल से तो आप तब कभी-कभी हिन्दी के मौलिक लेख भी भेजते रहते थे। इधर अब तो पिछले कई बरसों से आपके अंगरेज़ी और गुजराती लेखों का अनुवाद ही 'हरिजन-सेवक' में रहता है। हिन्दी में लिखने के लिए ही आपको कभी फ़ुरसत नहीं मिली!" मैं गुस्ताखी कर बैठा, पर मेरी इस धृष्टता का बापूने जो उत्तर दिया, और उससे उनका जो हिन्दी-प्रेम प्रकट हुआ, उसे सुनकर मैं चकित रह गया। बोले 'यह अच्छा होगा क्या कि सारेही लेख मैं हिन्दी में ही लिखूं और उनका अंगरेज़ी या गुजराती में अनुवाद जाय? पर इससे महादेव का काम बहुत बढ़ जायगा। स्वास्थ्य उसका पहले के जैसा मैं नहीं देखता, फिरभी तुम उससे पूछ लेना।"

महादेव भाई से जब मैंने बापू की यह बात कही

तो मेरे ऊपर उनकी प्रेमभरी फटकार पड़ी--"तब तो मैं बिल्कुल ही पिस जाऊँगा। अभी क्या काम का बोझ मेरे ऊपर कुछ कम रहता है ? सारे लेखों का अंगरेजी और गुजराती अनुवाद तुम्हारे नासमझी-भरे प्रस्ताव पर बापू मुझसे कराना चाहते हैं ?" मैं चुप हो गया। हिम्मत न पड़ी कि महादेव भाई का यह उत्तर बापूतक पहुँचाऊँ।

बापू और महादेव भाई दोनोंने ही हमेशा मेरी कठिनाइयाँ दूर करने का प्रयत्न किया। साप्ताहिक टिप्पणियों का अनुवाद मैं करता था, और बापू के मुख्य लेखो का भाषान्तर सीधे वर्धा से आ जाता था। बापू के जिन लेखों का अनुवाद मैं स्वयं करता था, उनमें यदि कभी कोई कठिन स्थल आ जाता, तो वहाँ मैं श्री-देवदास भाई से पूछ लिया करता था। मुझे याद है कि बापू के एक लेख के दो पैराग्राफों को देवदास भाई ने एकबार निकलवा दिया था और तार द्वारा अपने उस संशोधन की सूचना अंगरेजी 'हरिजन' के संपादक को तथा बापू को भी भेजदी थी। ऐसा करने का अधिकार एक देवदास भाई को ही था।

संपादन-कार्य से मुक्ति

आचार्य मलकानी के विलायत चले जाने के बाद

जब पूज्य ठक्कर बापा की आज्ञा से हरिजन-उद्योगशाला के व्यवस्था-कार्य की पूरी जिम्मेदारी मैंने अपने ऊपर लेली, और काम जब बहुत बढ़ गया, तब 'हरिजन-सेवक' के सम्पादन-कार्य से मुक्त कर देने के लिए मैंने बापूजी को पत्र लिखा । उसका उत्तर बापू ने मुझे जो दिया, उसके एक-एक शब्द में उनका अथाह स्नेह मैंने देखा । उन्होंने लिखा था :

भाई वियोगी हरि,

तुम्हारा खत मिला। तुम्हारी अति कोमल भाषा में भी तुम्हारा दुःख तो प्रगट होता ही है। लेकिन धर्म तो यही है कि तुम्हारी ही कृति होते हुए तुम्हारे को, उसकी पुष्टि के कारण, उसका वियोग सहन करना। आखिर में नाम क्या काम का ? तुमको अब हरिजन-सेवा में ज्यादा ध्यानावस्थित होने का मौक़ा मिला है।

मैं तो चाहता था कि पत्र यह कहीं से भी निकले, संपादक की जगह तुम्हारा ही नाम जाय। पर तुमने तो यह स्वीकार नहीं किया। बिना जिम्मेदारी के संपादक रहने में तुम नैतिक दोष मानते हो। तुम्हारे दृष्टिकोण को मैं समझता हूँ। और मेरे नजदीक उसको क़ीमत भी है।

एक बात मांगलूं। कुछ-न-कुछ लेख प्रतिसप्ताह

'हरिजन-सेवक' के लिए भेजा करो ।

बापु के आशीर्वाद

प्यारेलालजी के सम्पादकत्व में 'हरिजन-सेवक' का नव प्रकाशन १४ सितम्बर, १९४० को पूना से हुआ। प्रतिसप्ताह तो क्या, महीने में एकबार भी लेख भेजने की बापूजी की आज्ञा का पालन मैं नहीं कर सका। समय भी नहीं मिला। उद्योगशाला के व्यवस्था-कार्य में बहुत अधिक व्यस्त हो गया। जहाँतक याद पड़ता है शायद तीन या चार लेखही मैंने 'हरिजन- सेवक' में, उसका सम्पादन छोड़ने के बाद, दिये होंगे।

इसी प्रकार महादेवभाई ने भी स्नेह-भाव से ३१ अगस्त, १९४० को मुझे ऐसाही एक पत्र लिखा था:

प्रिय वियोगीजी,

दिल्ली से 'हरिजन-सेवक' यहाँ आ रहा है, इसके मानी यह नहीं कि आप उसमें नहीं लिखेंगे। मैं तो आशा यह करता हूँ कि आप अपना रोटीन बोझ उतारने के कारण अब अपनी क़लम अधिक चला सकेंगे। रोटीन के बोझ में लिखने का उत्साह नहीं रहता। अब आप लिखने के लिए अधिक उद्यत रहें, यह मेरी विनती है।

आपका

महादेव देसाई

: ७ :

सात्विक भोजन

'हरिजन-सेवक' के सम्पादन-कार्य से मुक्त होकर मैं अपना सारा समय उद्योगशाला के व्यवस्था-कार्य में देने लगा। यों तो इस संस्था के स्थापना-काल से ही, अर्थात् १९३६ के मार्च से ही कुछ-न-कुछ समय दे रहा था। शुरू मे विद्यार्थी बहुतही कम थे। रसोई और भंडार का काम देखने तथा पढ़ाई का साधारण वर्ग लेने का काम मैं तब किया करता था। कई आश्रमों में चल रहे सात्विक भोजन के प्रयोगों की बात को लेकर मैंने मिर्च-मसाला देना

जब बिलकुल बन्द कर दिया और अशुद्ध घी के बदले जब विद्यार्थियों को तेल देना शुरू किया, तब उनको यह प्रयोग पसन्द नहीं आया। कई लड़कों ने तो मेरी इस तानाशाही का विरोधभी किया। एक-दो लड़के घर चले जाने कोभी तैयार हो गये। तब मैंने इस बारे में बापू-जी से पूछा कि ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए। बापू ने मेरी कठिनाई को समझा, और १४ नवम्बर, १९३६ को सेगांव (सेवाग्राम) से नीचे का पत्र लिखा :

भाई वियोगी हरि,

घी के बारे में जबतक विश्वास न हो, तबतक उसे त्याज्य समझो। जो हजम कर सकते हैं वे तेल लेवें। घी के बदले दूध की मात्रा अवश्य बढ़ाई जाय। प्रयत्न से घी (शुद्ध) प्राप्त होना चाहिए।

मसाले के बारे में उदारता रखी जाय। विद्यार्थी जहाँतक जा सकें वहाँतक ही जाना उचित है। काली मिर्च आवश्यक मानें तो देना। हरी भी अगर उनको आदत है तो दी जाय। लेकिन उनको सात्विक भोजन का अर्थ समझाया जाय और जहाँतक वे जा सकें जावें।

आटा तो विद्यार्थी हाथों से पीसें तो अच्छा होगा, [illegible] में सस्ताभी।

बापु के आशीर्वाद

: ३ :

संस्था के कार्यकर्त्ता की जिम्मेदारी और उसकी कसौटी

यह प्रसंग १९४६ के नवम्बर मास का है। दिल्ली की हरिजन-उद्योगशाला का व्यवस्था-कार्य मैं पिछले सात साल से करता आ रहा था। मेरे साथ काम करने-वाले कुछ मित्रोंने एक दिन मुझपर एक पत्र लिखकर पक्षपात का दोषारोप किया। मुझे ऐसा नहीं लगा कि मैंने उनके लिखने के अनुसार अमुक मौके पर पक्षपात से काम लिया था। उनके इस आरोप से मैं विचलित हो गया और उद्योगशाला का व्यवस्थापक-पद छोड़ देने का मैंने तत्काल निश्चय किया। अपने निश्चय का पत्र संघ के अध्यक्ष श्रीघनश्यामदास बिड़ला को कलकत्ता, तथा पूज्य बापू और पूज्य ठक्कर बापा को भी अपने त्याग-पत्र की सूचना नोआखाली (पूर्वी पाकिस्तान) भेजदी। स्पष्ट है कि यह क़दम मैंने उतावली में और रोष में उठाया था। बापू को मेरा क़दम भूल-भरा मालूम हुआ। उसमें मेरे रोष की भी गंध उन्होंने पाई। १६ नवम्बर, १९४६ को बापूने मुझे लिखा :—

भाई वियोगी हरि,

वहाँ के (तुम्हारे) साथियों ने (तुमको) जो खत लिखा है सो मैंने कल पढ़ा। उसे मैं अविनयी नहीं मानता। उसका उत्तर (तुम्हारा) इस्तीफा नहीं है। उसका उत्तर तो उनके साथ बात करना और उनको संतुष्ट करना है। उनमें तो‥है, उसके मातहत काम करो। वहाँ से निकलना धर्म-त्याग होगा। अगर धर्म-संकट समझो, तो यहाँ आकर साफ करलो। बापा ने यह देखा है। मेरे विचार से मिलते हैं। हम दोनों यहीं फँसे हैं।

बापु के आशीर्वाद

ऊपर का पत्र पाकर मेरा अहंकारजनित रोष और-भे बढ़ गया। सोचने लगा, और तो खैर सब ठीक है, पर य‍ कैसी बात है कि जो कार्यकर्त्ता मेरे मातहत काम कर र‍ा है, उसके मातहत मैं काम करूँ? इस अजीब-सी सलाह से बापू के प्रति मेरी श्रद्धा कुछ डिग गई। सोच-वि‍ार में पड़ गया कि बापू की बात को मानूँ या न मानूँ। किन्तु रात में काफी गहराई से विचार करने के बाद अंत में इस निश्चय पर मैं पहुँचा कि बापू का यह आदेश मुझे मान लेना चाहिए।

दूसरे दिन सुबह मैंने अपने साथियों को बापू का पत्र सुनाया, और अपना निश्चयभी ज़ाहिर किया कि

आज से मैं ... के मातहत काम करूँगा। वह व्यवस्थापक रहेंगे और मुझे जो काम वे बतलायेंगे, उसे मैं बिना किसी हिचकिचाहट के करूँगा। मेरे उन मित्र की आँखों में आँसू भर आये। उन्हें यह मंजूर नहीं था कि मैं उनके नीचे काम करूँ। मेरा आग्रह था कि हम दोनो का यह परमधर्म है कि पूज्य बापू की आज्ञा का पालन करें।

एक महीनेतक मैंने विद्यार्थियों को पढ़ाने का और दूसरा जोभी काम मेरे सामने आया उसे एक सहायक के रूप में किया। रोष मेरा अब उतर गया था। बापू के आदेश में उनका स्नेह-ही-स्नेह मैं देख रहा था। अपने उक्त निश्चय की सूचना तार द्वारा मैंने उसी दिन नोआखाली भेजदी थी। बापू का संक्षिप्त उत्तर तार से मिला, और उसके बाद उनका निम्नलिखित पत्रभी आया :–

तुम्हारा तार मिला। हम दोनों (मैं और पा) राजी हुए, ऐसा तार मैंने भेजा। मेरा दूसरा खतभी मिला होगा। अब साथियों से प्रेमपूर्वक बातें करो और कहींभी दुरुस्ती की जगह हो वहाँ दुरुस्त करो।

सम्मेलन के सभापति बननेयोग्य हो। जो सेवा हो सो करो, मेरा आशीर्वाद तो है हीं।

बापु के आशीर्वाद

हमारी तपश्चर्या से ही

उन्हीं दिनों मैं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कराची-अधिवेशन का सभापति चुना गया था और इस सम्बन्ध में पूज्य बापू से मैंने पूछा था कि सम्मेलन का सभापति बनना मैं स्वीकार करूँ या न करूँ।

मेरे १० नवम्बर के पत्र का उत्तर पूज्य बापू ने १४ दिसम्बर, १९ ‘६ को यह दिया :–

भाई वियोगी हरि,

तुम्हारा १७ नवम्बर का खत मेरे हाथ में १४ दिसम्बर को मिला। ऐसी यहाँ की पोस्ट की व्यवस्था है !!! तुमने सब अच्छा किया है। अब हरिजनों की सेवा और ज्यादा सुशोभित होगी। समयभी ऐसा ही है कि हमारी तपश्चर्या जितनी घेरी (गहरी) हो इतना (उतना) अच्छा है और तुम्हारे में यह योग्यता है ही। हिं० सा० स० की गद्दी ठीक ही ली है। यथाशक्ति सेवा करोगे। यह सेवा हरिजन-सेवा में कोई वाधा नहीं करेगी इस बारे में मेरा खत मिल गया होगा।

बापु के आशीर्वाद

यह तो बापू के वात्सल्य का अतिरेक ही था, जो मुझे उन्होंने अपनी कसौटी पर कसा। मुझमें तो तपश्चर्या की वृत्ति न तब थी, और न आज है, पर बापू निश्चित

रूप से यह मानते थे कि हरिजन-सेवा का सबसे बड़ा, बल्कि एकमात्र साधन तो तपश्चर्या ही है। आज हम तथाकथित हरिजन-सेवक इस वास्तविक साधन के अभाव को कुछभी महसूस कर रहे हैं क्या ?

अस्पृश्यता का महान् कलंक हिन्दू-समाज और हिन्दू-धर्म पर से मिटा डालने के लिए तो बापू ने एक बार यहाँतक कहा था कि छुआछूत को मिटाने के लिए मैंने ऐसा विचार किया था कि उपवास की एक शृंखला चलाई जाये। अपने जीवन के इस चिरस्मरणीय प्रसंग के बारे में एक पत्र का एक उद्धरण मैं और देना चाहता हूँ। हरिजन-सेवक-संघ की उपाध्यक्षा (अब अध्यक्षा) श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने स्नेहवश अपने २६ नवम्बर, १९४६ के पत्र में लिखा था :–

प्रिय भाई हरिजी,

यह मैंने क्या पढ़ा कि तुमने इस्तीफा दिया था। तुम्हारे इस्तीफा देने पर उद्योगशाला कब चलनेवाली है ? मुझे सविस्तार लिखो कि बात क्या हुई थी। जिस संस्था को अपना रुधिर पिलाकर तुमने चलाया, उसको छोड़ने का विचार मन में कैसे आ गया ?

भवदीया

रामेश्वरी नेहरू

: ४ :

हिन्दी-सेवा से अधिक रस हरिजन-सेवा में

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने जब राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार-कार्य एक विशेष समिति को सौंपा, और उसका कार्यालय वर्धा में रखने का निश्चय किया, तब बापू ने

मुझे २ मई, १९३६ को जो पत्र लिखा था, उसमें मुझे वर्धा में रहकर हरिजन-कार्य एवं हिन्दी-प्रचार-कार्य दोनों साथ-साथ करने का सुझाव दिया था :–

भाई वियोगी हरि,

यहां 'हरिजन-सेवक' का काम तो है ही। हरिजनों की अन्य सेवा तो हर जगह है। अब तीसरा काम पैदा हुआ है। जमनालालजी की इच्छा से हिन्दी (साहित्य) सम्मेलन ने हिन्दी-प्रचार का कार्य एक विशेष समिति को सुपुर्द किया है, जो वर्धा में केन्द्रित होकर कार्य करेगी। उस समिति का तुमको मंत्री बनाने की हम सबकी इच्छा है बाबा राघवदास तो हैं, पर वे गोरखपुर नहीं छोड़ सकते क्या तुमको यह कार्य प्रिय है ? क्या वर्धा आना पसन्द करोगे ? क्या वहाँ का हरिजन-काम बगैर हरज के छूट सकता है ? यदि नहीं तो तुम्हारे ध्यान में ऐसा कोई शख्स है, जो हिन्दी-प्रेमी हो, और जो मंत्री का कार्य कर सकता हो और वर्धा में रह सकता हो ?

बापु के आशीर्वाद

उद्योगशाला का काम शुरू हुए मुश्किल से तब दो महीने हुए थे, पर 'हरिजन-सेवक' के सम्पादन-कार्य में से जितना समय मेरा बचता था उसे विद्यार्थियों के शिक्षण में तथा रसोईघर की व्यवस्था में लगाता था । इस

काम में सम्पादन-कार्य से भी अधिक रस आता था। मन नहीं हुआ कि उद्योगशाला का हरिजन-सेवा-कार्य छोड़ूँ और वर्धा में बैठकर हिन्दी-प्रचार का कार्य करूँ। मैंने जिन शब्दों में बापू का प्रस्तावित आदेश न मानने का उत्तर दिया उनमें बापू ने मेरा कुछ रोषपूर्ण अविनय अनुभव किया। फिरभी बापू कितने स्नेहालु और क्षमाशील थे!

सन् १९४१ में बापू ने एक-एक, दो-दो मास विभिन्न स्थानों में रहने की बात सोची थी। उन स्थानों में हमारे हरिजन-निवास का नाम नहीं था। लगा कि यह कैसे छूट गया। बापा से सलाह लेकर मैंने बापू को लिखा कि "वर्ष में कम-से-कम एक मास तो आपको हरिजन-निवास में आकर बैठनाही चाहिए। आप हरिजन-निवास को भूल कैसे गये?"

२ दिसम्बर, १९४१ को दो पंक्तियों का उत्तर सेवा-ग्राम से मिला :--

भाई वियोगी हरि,

तुम्हारा खत मिला। वहाँ एक मास प्रतिवर्ष देना मुझे प्रिय तो लगेगा। हो सके तो आगामी नवम्बर या अक्तूबर में दूं।

बापु के आशीर्वाद

: ५ :

रचनात्मक कार्यकर्त्ता और राजनीति

महादेव भाई के साथ मिलना मेरा यदा-कदाही होता था, पर जबभी वह मिलते, स्वभावत: बड़े प्रेम से दिल खोलकर मिलते थे। उनके साथ बात करने में बड़ा आनन्द आता था। प्रकृति से ही राजनीति में कोई खास रुचि न होने के कारण राजनीतिक प्रश्नों के बारे में उनसे मैं न तो कभी कोई बात करता था और न उन्हें कुछ लिखताही था। लेकिन देश की और कां प की खास करके १९४० में, जबकि दूसरा महायुद्ध ल रहा था, कुछ दुविधा की जैसी स्थिति को देखकर, त ा बापू का मानस समझने के विचार से मैंने बापू को एक अपवाद-स्वरूप पत्र लिखा था। उसका उत्तर बापू की ओर से महादेवभाई ने मुझे यह दिया था :–

प्रिय वियोगी हरिजी,

> **आपका २७ अगस्त का पत्र बापू ने मुझे दिया ताकि उसका उत्तर दूं। मैं उत्तर क्या दूं ? आप जो लिखते हैं, सब बात ठीक है। बापू के ज्ञान के बाहर भी नहीं है। और बापू अबतक तो सारी सिचुएशन (स्थिति) सँभालते आये हैं, अब क्या होगा, देखें। अबभी बापू सारा सं ालने**

की कोशिश कर रहे हैं। अहर्निश प्रार्थना कर रहे हैं। १५ तारीख को बम्बई में क्या होगा, मैं नहीं जानता। पर बापू के हाथ में बाजी रही तो काफी सावधानी रहेगी। बाक़ी अरण्यवास में भेजने के लिए तो सब तैयार हैं ही। मैं तो चाहता हूँ कि बापूजी अकेले अरण्यवास में जाते, पर वहभी सम्भावित नहीं था। ईश्वर बलवान् है, कृपालु है, जो करेगा अच्छा ही करेगा। थोड़ेही दिनों में शायद दिल्ली में मिलेंग।

आपका

महादेव देशाई

उद्योगशाला का संक्षिप्त विवरण पूज्य बापूजी को मैं [illegible]ने एक पत्र के साथ १४ जुलाई, १९४२ को भेजा [illegible] उस पत्र में मैंने बापूजी से यहभी पूछा था कि देश [illegible] जो एक बड़ा स्वातंत्र्य-युद्ध शायद आखिरी छिड़ने-वाला है, उसमें रचनात्मक संस्थाओं की क्या स्थिति हो[illegible] इसका उत्तर बापू ने चार-पाँच पंक्तियों में २० [illegible] १९४२ को यह दिया था :—

भा[illegible]गी हरि,

तुम्हारा खत मिला। तुम्हारा ठीक चलता देखता अच्छा है। इस समय कौन कह सकता है क्या होगा। [illegible] सब तैयार रहें, जिसके भाग्य में जो आवे वह उठावे।

बापु के आशीर्वाद

: ६ :

धर्म-स्तम्भ के सन्देश-वाक्य

दिल्ली के हमारे हरिजन-निवास में श्रीजुगलकिशो बिड़ला के अनुरोध पर, उनके अनुदान से, हमने ला पत्थर का एक कलापूर्ण स्तम्भ खड़ा करने का तय वि था। १९४१ की बात है यह। स्तम्भ के बारे में ने श्रीकिशोरलाल भाई को तब जो पत्र लिखा था, उसे उन्होंने पूज्य बापूजी को जब पढ़कर सुनाया, तो स्तम्भ का निर्माण बापूजी को पसन्द नहीं आया। स्तम्भ तो ३० फुट ऊँचा बन चुका था। उसपर खुदवाने के ए बापू के चुने हुए सुवचनों का संकलन मैंने किशो ल भाई से माँगा था। बापू की नापसन्दी का उल्लेख ते हुए ३० मई, १९४१ के पत्र में सेवाग्राम से उन्होंने मुझे लिखा:—

आपका पत्र पूज्य बापूजी को सुनाया। जब इस हव-

तक आपकी तैयारियाँ हो चुकी हैं, तब आपको रोक तो नहीं सकते हैं, पर बापूजी पर आपकी दलीलों का असर नहीं हुआ है। वह कहते हैं, "मेरा कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है। उसमें परिवर्तन, विकास आदि के लिए भी अवकाश है। शिला-लेख एक ऐसी स्थायी चीज है, जिसमें जीवन के अन्त में निश्चित सिद्धांतों का ही उल्लेख करना चाहिए।" कुछ सनातन वाक्य आप जरूर खोज तो सकते हैं, पर वे सनातन होने के कारण ही निर्विशेष-से होंगे। पूज्य बापूजी का मौलिक संदेश चिरंतन काल के लिए आना जरूरी है। वैसा संदेश आज देने के लिए उन्हें उत्साह नहीं। हरिजनों में जन्म लेने की इच्छा-वाली बात—जिस भविष्य में हरिजन या अस्पृश्यता-जैसी चीजही नहीं होगी—उस जमाने को जनता को विचित्र-सी मालूम होना संभव है, यद्यपि वह इस जमाने के लिए तो बड़ीही भारी उक्ति है। इस तरह की उनकी विचारधारा है। इसपरभी आप लोगों को योग्य मालूम हो तो वह कर सकते हैं। राजकुमारीजी के आने पर उन्हें कुछ चुन देने के लिए अनुरोध करूँगा, लेकिन आप पुनः सोचें।

आपका
किशोरलाल

बात यहभी थी कि बापूजी से शायद किसीने ऐसा कुछ कह दिया था कि हरिजन-निवास में एक 'गांधी-स्तम्भ' खड़ा किया जारहा है। पर ऐसी बात थी नहीं। गांधीजी के नाम पर स्तम्भ खड़ा करने की बात हमने असल में कभी सोचीभी नहीं थी। उसे तो हम 'धर्म-स्तम्भ' के नाम से ही बना रहे थे। उपनिषदों के मंत्रों, बुद्ध-वचनों और गीता-सूक्तियों के साथ गांधी[illegible] सिद्धान्त-वाक्य उसके चारों ओर खुदवाने का [illegible]ने निश्चय किया था। स्तम्भ बन जाने के बाद जब ने हरिजन-निवास में आकर उसे ध्यान से देख[illegible] प्रसन्नही हुए। बोले, 'अच्छा! तो यही तुम्हार[illegible] बेवकूफी है, जिसके बारे में किशोरलाल से तुम्ह[illegible]ने पत्र लिखाया था? ठीक है, इसका नाम तुमने [illegible] स्तम्भ रखा है, गांधी-स्तम्भ नहीं।' इसपर मैं[illegible] ज़बान से कहा, "पर, बापू! लोग तो इसे 'गां[illegible] लाट' के नाम से ही जानते हैं, उसी तरह जै[illegible] हरिजन-निवास को लोग 'गांधी-आश्रम' कह[illegible] हैं।"

धर्मस्तंभ पर गांधीजी के जो वचन खुदे हैं उनको किशोरलाल भाई ने ही चुना था।

: ७ :

मत-स्वातन्त्र्य और अविनय

एक प्रसंग और, जिसे मैं कभी भूल नहीं सकता। उन दिनों मैं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति था। यू०पी० की सरकारने हिन्दी को राज्यभाषा बनाने का जब निश्चय किया, तो बापू ने दिल्ली में अपने एक प्रार्थना-प्रवचन में हिन्दुस्तानी पर बोलते हुए उक्त निश्चय की कुछ टीका की थी। मैंने यू० पी० सरकार को बधाई ... ... अप्रत्यक्ष रूप से बापू की टीका के प्रति अपना कुछ ...रोध प्रकट किया था। इसपर एक दिन मुझे बिड़... -हाउसमें बुलाकर बापू ने कहा, "मुझे तुम्हारा यह ... ...व्य .... ने लाकर दिया था। तुम्हें या किसी-को ... अपना स्पष्ट मत जाहिर करने का अधिकार है। मु... ...ं तो तुमसे सिर्फ इतनाही कहना था कि तुम्हारे वक्तव्य की भाषा में विनय की कमी मैंने देखी। क्यों, तुमको ऐसा लगता है?" मैंने इसपर इतनाही कहा

"तो बापू, मैं आपसे हिन्दी और हिन्दुस्तानी के बारे में न कुछ कहूंगा और न कुछ लिखूंगा। आपके प्रति अविनयी बनने का अब कभी मौका ही नहीं आने दूंगा।"

दूसरे दिन तीन-चार पंक्तियों का एक छोटा-सा बापू का पत्र मुझे मिला। उसमें लिखा था —

भाई वियोगी हरि,

तुमने कल जो कहा था कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी के बारे में तुम अपना विचार जाहिर नहीं करोगे और न लिखोगे ही, उसमें मैंने तुम्हारे अन्तर के रोष को देखा। अपने विचार को दबाना, यह तो हिंसा है। मैं तो इतना ही चाहता था कि जो भी कहो और लिखो, उसमें अविनय के लिए स्थान नहीं होना चाहिए। तुम मौन लेकर बैठ जाओगे, इससे मुझे दुःख ही होगा।

मुझे अपनी भूल मालूम हुई। [illegible] और हिन्दुस्तानी के बारे में [illegible] [illegible] मैंने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहिए

लगता था । पर किशोरलाल भाई से जब कभी मैं किसी प्रश्न के बारे में पूछता, वह तुरन्त उसका समाधानकारक उत्तर लिख भेजते थे । किन्तु पत्र मैं उनको कभी-कदास ही लिखता था । विद्यार्थियों की सामान्य अनुशासन-हीनता के बारे में मैंने एक पत्र में जब उनको लिखा, तो उसका उत्तर उन्होंने ६ जनवरी, १९५० को इस प्रकार दिया :—

प्रिय वियोगी हरिजी,

आपका पत्र पाकर आनन्द हुआ। हरिजन- ालोनी में दो बार आ गया, पर आपकी मुलाकात न हो सकी, इसका दुःख था। विद्यार्थियों के चारित्र्य के बारे में दुःख तो है; साथही, कारणों की खोज करने की भी जरूरत है। एक कारण–गृह में योग्य वायु-मण्डल और संस्कार-दान का अभाव; दूसरा–अध्यापकों की उदरपरायणता की दृष्टि; और तीसरा-नीचे के दर्जों के शिक्षको का बहुत ही दरिद्र वेतन, जिसके कारण अच्छी योग्यता के अध्यापकों का अभाव। पर निराशा में डूबकर तो काम नहीं चल सकता। 'मरते दमतक करते रहो, भगवान् चाहे सो सिद्धि हो।' इस वृत्ति से ही हमें जीवन चलाना होगा।

आपका

किशोरलाल मशरूवाला

: ९ :

बापा की कल्याण-कामना

गांधीजी के महानिर्वाण के पश्चात् पूज्य ठक्कर बापा की जीवन-यात्रा तीन वर्षतक चलती तो रही, अनेक-विध कल्याण-कार्यों को भी बापा ने वेग और प्रेरणा दी, पर शरीर उनका धीरे-धीरे जरा-धर्म के अधीन होता गया। आँखों की ज्योति लगभग जवाब दे चुकी थी, हृदय का दौरा भी दो बार हुआ, फिरभी जीर्ण छकड़े को चलातेही रहे। हिम्मत न हारी, जगत् के कल्याण का चिन्तन वैसाही जारी रहा। एक-एक साँस का हिसाब रखा। कभी गाफिल नहीं हुए। शरीर की शक्ति क्रमशः क्षीण होती जा रही थी, किन्तु लोक-सेवा का सहज उत्साह दिन-प्रतिदिन तेजस्वी होता जा रहा था।

दिल्ली में जब स्वास्थ्य सँभला नहीं, तब बापा

ने मित्रों की सलाह से अपने छोटे भाई डॉ० केशवलाल के साथ भावनगर में कुछ काल विश्राम करने का निश्चय किया। हम हरिजन-निवास के कार्यकर्त्ताओं और विद्यार्थियों ने २० मार्च, १९५० को बापा को जब भाव-भीनी विदा दी, तब उनका गला भर आया, आँखों में स्नेह के आँसू छलछला आये। हम सबको अपना आशीर्वाद देकर भावनगर को रवाना हो गये। कौन जानता था कि बापा का वह आशीर्वाद हमारे हरिजन-निवास को अंतिम था !

भावनगर में भी स्वास्थ्य में कोई खास सुधार नहीं हुआ। कोई डेढ़ महीने ही वहाँ कुछ अच्छे रहे। काम-भी वहाँ किया। ९ मई को अपने अनन्य सेवक हरखचन्द शाह के भक्तिपूर्ण आग्रह से उनके घर चोरवाड़ चले गये। वहाँपर स्वास्थ्य में थोड़ा-सा सुधार हुआ और मनभी प्रसन्न रहने लगा। कुछ दिन वहाँ आनंद में बीते। चोरवाड़ से मुझे बापा ने एक पत्र में लिखा :–

भाई श्री वियोगी हरिजी,

यह पत्र इसीलिए लिखा रहा हूँ कि मेरे हर्ष में आप तथा प्रार्थना में इकट्ठे होनेवाले तमाम शिक्षक भाई, विद्यार्थी और बालक वगैरा शरीक हों।

यहाँ हरखचन्द भाई की बड़ी लड़की, जिसका नाम

विजया गांधी है और जो श्रीनारणदास गांधी की पुत्र-वधू है, रात को रोज बहुत सुन्दर ढंग से प्रार्थना कराती है और अपनी ११ वर्ष की बच्ची के साथ नये-नये भजन बहुत अच्छी तरह गाकर सुनाती है। रोज रात को ८ से ९ तक तीन-चार कुटुम्बों के स्त्री-पुरुष और बच्चे जमा होकर कल्लोल करते हैं। यह क्रम यहाँ आने के बाद शुरू के तीन-चार दिन छोड़कर बराबर चल रहा है। इस समय मुझे तुम्हारे वहाँ का प्रार्थना-मन्दिर याद आ रहा है और शास्त्रीजी (उद्योगशाला के साहित्य-अध्यापक श्रीबाल-कृष्ण शास्त्री) भी याद आ रहे हैं। यह पत्र प्रार्थना के बाद पढ़कर सबको सुना देना।

आपका

अ० वि० ठक्कर

२२ जून, १९५० को मैंने जो पत्र बापा को लिखा था, उसका उत्तर २६ जून को उन्होंने नीचे के पत्र में दिया :—

भाई वियोगी हरिजी,

तुम्हारा २२ जून का पत्र मिला। पढ़के हर्ष हुआ। चोरवाड़ के जलवायु में दिन-पर-दिन आहिस्ते-आहिस्ते अच्छा होता जाता हूँ। मैं जुलाई में दिल्ली नहीं आऊँगा और अगस्त, सितम्बर में तो भावनगर में ही रहूँगा।

वहीं से थोड़ा-बहुत काम करता रहूँगा, जैसा आजकल यहाँ करता हूँ। पंडित कुंजरू यहाँ दो दिन रह गये। उन के साथ इस बात का निश्चय कर लिया है। तुम्हारी और शिवम् की सम्मति होगी। हमारे बालिका-आश्रम के (दिल्ली का कस्तूरबा-बालिका-आश्रम) मकान के काम के बारे में खबर देना। प्रार्थना के वक्त सबको मेरा आशीष कहना।

अ० वि० ठक्कर का वन्दे

मेरे कई दिनोंतक पत्र न लिखने पर पूज्य बापा ने चोरवाड़ से जो पत्र लिखा, उसके एक-एक शब्द में उनका अपार स्नेह प्रकट होता है। लिखा :–

भाई श्रीवियोगी हरिजी,

आपकी तरफ से जब बहुत दिनोंतक कोई पत्र नहीं आता, तब ऐसा महसूस होता है कि अभीतक एक मित्र का पत्र आना बाकी रह गया है और मन में यहभी प्रश्न उठता है कि अभीतक उन्होंने पत्र क्यों नहीं लिखा होगा? कोई प्रसंग न हो तोभी राजी-खुशी का पत्र लिखते रहिए। आपका पत्र आने से मुझे एक प्रकार का मानसिक सन्तोष होता है।

आजकल हमारी उद्योगशाला में छुट्टियाँ होंगी और लड़के सब घर गये होंगे। थोड़े-बहुत रहे होंगे।

लक्ष्मण (मेरा ममेरा भाई) के घर पर माताजी (मेरी मां), शांति (लक्ष्मण की पत्नी) तथा उसके चारों बच्चे सब अच्छे होंगे। संतोष और शकुन्तला दोनों को याद करता हूँ। माताजी को मेरा नमस्कार कहना।

बिड़ला-परिवार के समाचारभी लिखते रहें। कोई खास बात हो तो जरूर लिखें। भाईजी (श्रीजुगलकिशोर बिड़ला) कहाँ हैं? दिल्ली में हों, तो उन्हें मेरा नमस्कार कहना।

हमारे आश्रम में सहदेव, विष्णु तथा मेरे पड़ोसी दामोदर मास्टर, भगवत, मोती वगैरा को मेरा आशीष कहना। बच्चों को वालीबाल खेलने देना।

मेरा स्वास्थ्य जैसा दिल्ली में रहता था, वैसाही अच्छा-बुरा रहता है। एक बार भावनगर में और एक बार चोरवाड़ में स्वास्थ्य को काफी धक्का लगा। इससे घर में भी चलना-फिरना मुश्किल हो गया है। ईश्वर को इस शरीर से जबतक थोड़ा-बहुत काम लेना होगा लेगा। अभी तो विचार करने की शक्ति जैसी की वैसी बनी हुई है। फिरभी स्मरण-शक्ति घट गई है।

सबका करे कल्याण, दयालु प्रभु सबका करे कल्याण।

आपका

अ० वि० ठक्कर

: १० :

अपना-अपना कार्य करते रहो

भावनगर आने के लिए जब मैंने बापा को लिखा तो उन्होंने उद्योगशाला का काम छोड़कर भावनगर आने की राय नहीं दी। लिखा :–

भाई वियोगी हरिजी,

सिर्फ मुझे देखने के लिए भावनगर तुम्हारा आना योग्य नहीं लगता है। जहाँपर जो हो वहां उसको अपना

काम करते रहना चाहिए—'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः।'

अ० वि० ठक्कर का वन्दे

मन मसोसकर रह गया. लेकिन कुछ दिनों बाद एक काम से मेरा बम्बई जाना हुआ, और वहाँ से फिर मैंने बापा को पत्र लिखा कि यहाँ से तो भावनगर नज़दीक है, क्या मैं एक दिन को आ सकता हूँ ? तार मिला:

"आ सकते हो, पर आना हवाई जहाज से।"

वह असीम वात्सल्य !

समझ में नहीं आया कि हवाई जहाज़ से आने के लिए क्यों कहा है ! भावनगर पहुँचा, तो बड़े स्नेह से मेरे कंधों पर हाथ रखकर बापा बोले : "अच्छा हुआ कि तुम आ गये। रेल से आने-जाने में दिन अधिक लग जाते। तब मेरे पास तुम कम समय ठहर पाते। इसीलिए हवाई जहाज़ से भावनगर आने के लिए मैंने तुम्हें तार दिलाया था। जाना भी तुम हवाई जहाज़ से ही। आ गये तो मेरे पास तीन दिन रहो।"

मैंने देखा कि बापा के हृदय की सरलता, कोमलता और जन-वत्सलता जैसे रोम-रोम से फूट रही थी। जराजीर्ण देह क्षीण हो चुकी थी, पर चेहरे पर निश्छल सेवा-परायणता और भगवद्-भक्ति वैसी-की-वैसी झलक

रही थी ।

भगवान् के सौंपे काम में आनन्द

तीन दिन उस महर्षि के चरणों के समीप बैठकर अपनेको कृतार्थ माना। यों तो १८ वर्ष सतत बापा के सान्निध्य में रहा, पर इन तीन दिनों की महिमा तो कुछ औरही थी। मैं चलने लगा, तो मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बोले—"मुझे आनन्द है कि भगवान् ने जो काम सौंपा था, उसे करते हुए मुझे खूब सुख मिला। चिन्ता अब एकही है। बिहार के अत्यन्त ग़रीब मुसहर लोग हमेशा मेरी आँखों के सामने रहते हैं, उनके लिए अगर मैं कुछ कर सकूँ तो मुझे भारी संतोष होगा।"

भावनगर से चलते समय वहाँ के दो सेर नामी पेड़े बाज़ार से मँगवाकर दिये, और कहा—"हमारी कालोनी के छोटे-छोटे बच्चों को मेरी तरफ से ये पेड़े बाँट देना।" यह भी गद्गद कंठ से कहा—"हरिजन-निवास के तुम सब कार्यकर्त्ता परस्पर खूब प्रेमपूर्वक मिलकर रहोगे, तो मुझे बहुत आनन्द होगा और हमारा कामभी आगे बढ़ेगा।"

भावनगर से चलने से एक दिन पहले मुझसे अपना वह हाईस्कूलभी देख आने के लिए बापा ने बड़े प्रेम से कहा था, जहाँ कि उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी।

: ११ :

भावनगर से लौटने के बाद १४ अगस्त, १९५० को पूज्य बापा को मैंने लिखा :—

पूज्य बापा,

दो दिन ग्वालियर ठहरकर ७ तारीख की शाम को दिल्ली पहुँचा। यहाँ आकर उद्योगशाला का सारा काम ठीक पाया। हरिजन-निवास के सब लोग सकुशल हैं। शाम की प्रार्थना के समय आपके स्वास्थ्य का समाचार और आशीर्वाद सब बच्चों और कार्यकर्त्ताओं को कह दिया।

बड़ा संतोष हुआ कि मैं भावनगर हो आया। आपके

दर्शनों की बहुत दिनों से इच्छा थी, वह पूरी हो गई। आपको इतना अधिक दुर्बल और जरा-जीर्ण देखकर दुःख हुआ, किन्तु यह तो शरीर धर्म है, जो अवश्यम्भावी है। आपका एक-एक क्षण आजभी परहित-चिन्तन में ही लग रहा है, इससे हम सबको प्रेरणा और शक्ति मिलनी चाहिए। प्रभु से हमारी प्रार्थना है कि आप स्वस्थ हो जायें और जहाँ-कहींभी आप हों, वहाँ से हम लोगों को अपना आशीर्वाद और सेवा करने का बल देते रहें।

स्नेहपात्र
वियोगी हरि

भावनगर से पूज्य बापा ने २९ नवम्बर, १९५० को मुझे तथा श्रीशिवम् को लिखा :—

"भाई वियोगी हरिजी,

आज ८२ वाँ वर्ष शुरू होता है, इसलिए तुम्हें यह पत्र मैं लिख रहा हूँ। मेरा जैसा-तैसा शरीरभी ईश्वर निभाता जा रहा है। यह उसकी बड़ी कृपा है, यद्यपि मैं उस कृपा के लायक नहीं हूँ। मुझसे जितनी सेवा बनती है, लेटे-लेटे या बैठे-बैठे लिखाकर करता रहता हूँ।

सब विद्यार्थियों को, शिक्षकों को और आफिस के कार्यकर्त्ताओं को तथा माताजी (मेरी माँ) से लेकर सब छोटी बहिनों को मेरा नमस्कार पहुँचा देना। हमारे मेहमान

टंडनजी (उन दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष श्रीपुरुषोत्तमदास टंडन हरिजन-निवास में रहते थे) को भी मेरा नमस्कार कहना।

आपका

अ० वि० ठक्कर

पूज्य बापा के आदेश से राजस्थान के सुप्रसिद्ध आदिवासी सेवक श्रीभोगीलाल पंड्या के साथ दक्षिण राजस्थान का प्रवास मैंने उन्हीं दिनों किया था, और अपने प्रवास की रिपोर्ट भावनगर भेजदी थी। २४ नवम्बर को मैंने बापा को लिखा :—

पूज्य बापा,

यह जानकर संतोष हुआ कि आपको मेरे प्रवास की सारी रिपोर्टें मिल गईं। उदयपुर की रिपोर्ट आज भेज रहा हूँ। वहाँ के कार्यकर्त्ताओं के बीच में मैंने जो चर्चा की थी, उसकी भी एक कापी इसके साथ भेजता हूँ।

राजस्थान में हरिजन-कार्य हमने लगभग शून्यवत् देखा। लोग इस धर्म-कार्य को छोड़कर राजनीति की तरफ भाग रहे हैं। इस मोहिनी माया के जाल से शायद ही कोई बचे। जोभी ईश्वर-कृपा से बच जायें, उन्हें इस सेवा को एक धर्म-कार्य मानकर करना होगा। सरकार और कांग्रेस के कार्य करने की रीति भिन्न प्रकार की है, और वैसीही

रहेगी। परन्तु हमें परमुखापेक्षी नहीं बनना है। हरिजनों एवं आदिवासियों की सेवा एक ऐसा धर्म है, जो केवल हृदय-साध्य है, उतना धनसाध्य या सत्तासाध्य नहीं। यह मुझे सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट हो गया है कि अस्पृश्यताके रहते हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रताभी स्थायी रहनेवाली नहीं।

मेरा मन होता है कि एक बार सारे उत्तर भारत की यात्रा कर डालूं और सवर्णों से जगह-जगह पर कहूँ कि पूज्य बापू के इस अधूरे कार्य को अगर आप लोग पूरा नहीं करेंगे तो बापू की आत्मा को, जिनको कि हम राष्ट्रपिता कहते हैं, कैसे सन्तोष दिला सकेंगे ? सारे हिन्दुस्तान में नहीं, तो कम-से-कम उत्तर भारत में बापू का और आपका संदेश सुनाने के लिए मैं आज बहुत व्याकुल हो रहा हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि मेरी यह साध पूरी हो सके।

स्नेहपात्र

वियोगी हरि

बापा के आशीर्वाद से मेरी वह साध बहुत-कुछ पूरी हुई। उनके अवसान के पश्चात् देश के कोने-कोने में घूमा, उनका यशोगान किया, हरिजनों की स्थिति को अपनी आँखों से देखा, पूज्य बापू और बापा का संदेश जगह-जगह सुनाया, और आजभी वही कर रहा हूँ।

नहीं जानता कि इन दोनों महापुरुषों से मैंने जो-कुछ पाया, उसका एक कणभी कभी चुका सकूँगा या नहीं ।

ऊपर के पत्र की कई दिनोंतक प्रतीक्षा करने पर जब बापा का उत्तर नहीं मिला, तब ऐसा लगा कि या तो मेरा पत्र पहुँचा नहीं या संभव है कि तबीयत उनकी कुछ ज्यादा बिगड़ गई हो, इसलिए डाक उनको न दिखाई जाती हो । जब मैं अगस्त के शुरू में भावनगर गया था, तब यह सोचाभी जा रहा था कि अत्यन्त आवश्यक और चिन्ताजनक असर न डालनेवाले पत्रही बापा के सामने रखे जायें, दूसरे पत्र नहीं । मैंने, यह जानते हुए भी, २५ दिसम्बर, १९५० को निम्न पत्र लिखा :—

पूज्य बापाजी,

आज बहुत दिनों के बाद यह पत्र लिख रहा हूँ । क्षमा करें ।

राजस्थान-प्रवास के सम्बन्ध में एक लम्बा पत्र मैंने लिखा था, उसका आपकी ओर से कुछ भी उत्तर नहीं आया । संदेह होता है कि वह पत्र मिला या नहीं ।

जनवरी के अंत में मध्यभारत के कुछ स्थानों में घूमने का मेरा विचार है । उसके बाद उत्तरप्रदेश के कुछ भागों में, जहाँ हरिजन-कार्य के लिए काफी क्षेत्र है, पर

काम कुछभी नहीं हो रहा है।

उद्योगशाला का काम ठीक तरह से चल रहा है। कुल १४६ लड़के हैं। स्वास्थ्य सबका ठीक है। दरज़ी-विभाग कैसे चलेगा, यही एक चिन्ता है। पूज्य बापूजी ने खादी के ही कपड़े सिलवाने का आग्रह रखा था, यह तो आपको मालूम ही है। मैंने उस दिन बापू के साथ इस बारे में काफी बहस की थी, पर अन्त में मैं चुप हो गया, जब उन्होंने गहरी साँस लेकर कहा--"अब मैं कुछ नहीं कहूँगा; जब मेरी बात मेरे अपने परिवार के ही आदमी नहीं सुनते हैं, तब दूसरे सुनेंगे, इसकी आशा मैं कैसे करूँ?"

बापू के उस आदेश को हम किसी तरह निभाते तो जा रहे हैं, पर अब बाहर से सिलाई सिखाने के लिए कोई आर्डर नहीं मिल रहे हैं, विभाग में आय का होना तो दूर की बात है। आपका इसपर क्या मत है? क्या मिल के कपड़े सिलाने को देने लगूँ, या इस विभाग को ही बन्द कर दिया जाये?

प्रेस हमारा अच्छा चल रहा है। बड़ी प्रिंटिंग मशीन २० जनवरीतक आ जायेगी। आर्डर उसका दे दिया है। रुपया तो एक मित्र से प्रेस तथा लोहार-विभाग के लिए ४० हजार मैंने माँग ही लिया है।

आशा है, आपका स्वास्थ्य इधर कुछ सुधरा होगा।

हमारे बीच में से सरदारजी के चले जाने से भारत-राष्ट्र की नौका जैसे डूब-सी गई, पर अपना क्या वश ?

स्नेहपात्र

वियोगी हरि

मेरे इस पत्र का उत्तर फौरन बापा ने दिया। २८ दिसम्बर को जो पत्र उन्होंने मुझे भेजा, कौन जानता था कि उनका वह अन्तिम पत्र था।

भाई वियोगी हरिजी,

तुम्हारा दिल्ली से २८ दिसम्बर, १९५० का पत्र मिला। तुम्हारे महत्त्व के प्रश्न के उत्तर देने का प्रयत्न करता हूँ।

खादी के ही कपड़े सिलाने का आग्रह छोड़ देने का समय आज आ गया है। बापूजी के निधन के दो साल पश्चात् ऐसा मुझको सूझता है। दरजी-विभाग का काम हम छोड़दें तो लड़कों की संख्या आधी हो जायेगी। ऐसा करना ठीक नहीं। तब अपनी पराजय स्वीकार करनाही अच्छा है।

प्रिंटिंग मशीन जब आ जाये, तब कृपाकर खबर देना। प्रेस की व्यवस्थित रचना में तुम्हारा बहुत टाइम लगेगा।

अ० वि० ठक्कर का वन्दे

: १२ :

देहावसान के पश्चात् !

पूज्य बापा की तबीयत बहुत अधिक खराब हो गई, यह खबर मिलतेही मैंने १८ जनवरी १९५१ को जो पत्र मैंने भेजा, वह उनके देहावसान के बादही भावनगर पहुँचा होगा :—

पूज्य बापा,

डॉ० ठक्कर साहब (बापा के छोटे भाई स्व० केशवलाल ठक्कर) ने श्रीघनश्यामदास बिड़ला को जो पत्र लिखा है, उसकी नक़ल मुझेभी उन्होंने भेजी है। उसे पढ़कर आपकी तबीयत के बारे में चिंता हुई। मेरी प्रार्थना है कि आप पूर्ण विश्राम करें। पत्र-व्यवहारका काम बिल्कुल बन्द करदें और मन में किसीभी प्रकार की चिंता न आनेदें। हम लोग आपके प्रिय कार्यों को, आपके आशीर्वाद से, यथाशक्ति कर रहे हैं, और करते रहेंगे।

श्री टंडनजी २ फरवरी को आपको देखने के लिए भावनगर आयेंगें, ऐसा उन्होंने मुझसे कहा है। मैंभी उनके साथ आऊँगा, पर अब तो मन ऐसा करता है कि उनसे पहले ही आपके दर्शनार्थ एक बार पुनः भावनगर हो आऊँ। आज्ञा दें, मुझे रोकें नहीं। अपने आश्रम के सब लोग सकुशल हैं। छोटे-बड़े आपको प्रणाम लिखाते हैं।

स्नेहपात्र
वियोगी हरि

बस, इतनेही कुछ पत्र पूज्य बापा के मेरे पास रखे हुए थे, जो उनकी निष्काम सेवा-भावना, स्फटिक की जैसी पारदर्शी निर्मलता और उनकी सहज वत्सलता व्यक्त करने के लिए पर्याप्त हैं।

: १३ :

बापा के स्नेह की थाती

पूज्य बापा का देहावसान १९ जनवरी, १९५१ को हुआ। बापा को उनके अनेक मित्रों और भक्तों ने जगह-जगह श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। हमारी आँखों के सामने एकबार अँधेरा-सा छा गया। लगा कि बापा के चले जाने के बाद हरिजन-सेवक-संघ का और आदिमजाति-सेवक-संघ का काम आगे कैसे बढ़ेगा ? हमें अब कौन सही मार्ग दिखायेगा ? कौन प्रेरणा देगा ? किशोरलाल भाई-जैसे महान् विचारक एवं ऊँचे साधक के हृदय को भी बापा की मृत्यु से असह्य धक्का लगा। उन्होने वर्धा से २३ जनवरी को मुझे बड़े प्रेमल शब्दों में पुण्यश्लोक बापा का स्मरण कराते हुए लिखा :—

प्रिय श्रीवियोगी हरिजी,

पूज्य ठक्कर बापा के देहान्त की बात सुनी तबसे आप, श्रीकांत भाई, श्यामलालजी आदि हरिजन, आदि-

वासी, स्त्री जाति आदि के सेवकों और सेव्यों का स्मरण हुआ करता है। उसी दिन आपको पत्र लिखना चाहता था, परन्तु थक गया और समय न पा सका। हर रोज प्रयत्न किया, परन्तु कोई-न-कोई रुकावट आ गई और लिख न सका। उनके अवसान से मुझे जैसा विषाद हुआ, वैसा शायद बहुत वर्षों में नहीं हुआ। उसपर से आपके आश्रम-वासी बालकों के और अन्य साथियों के दिल की कल्पना कर सकता हूँ।

ईश्वर ने आपको बापा के जैसा ही कोमल हृदय दिया है। परन्तु बापा का हृत्सरोवर सम्भवतः बहुत बड़ा था, प्रांतीय सीमाओं से परे था। आपका दिल वैसाही होते हुए आपको इतना मौक़ा नहीं मिला कि आप देश के कोने-कोने में जाकर सबको अपना प्रेमामृत पिला सकें। बापा के रहते हुए आपको वैसा प्रयोजन नहीं था। मेरा खयाल है कि अब आपको वह काम करना पड़ेगा। बापा के अन्य व्यवहार-कुशलता के गुण आपमें कम हों या ज्यादा इसका मैं बहुत खयाल करता नहीं। उस बाजू को श्री-कांतभाई वग़ैरा सँभाल लेंगे। परन्तु जो प्रेम का पान बापा कराते थे वह आप करायें, ऐसी आपको प्रेरणा हो और उतनी शक्ति प्राप्त हो, ऐसी परमात्मा से प्रार्थना करता हूं।

श्रीकांत भाई बापा का बहुत-सा जिम्मा वर्षों से उठाते आये हैं। परन्तु उनके होते हुए जिम्मा उठाना एक चीज थी, उनकी जगह लेकरके उठाना दूसरी चीज हो जाती है। परमात्मा उन्हें ऐसी शक्ति दे कि वह उनके काम को न सिर्फ व्यवहार-कुशलता से, बल्कि उनके प्रेम-भरे सौजन्य के साथ बढ़ायें। 'जे कां रंजले गांजले' के वह संरक्षक नियुक्त किये गये हैं। परमात्मा उनके द्वारा इन लोगों का पूरा संरक्षण कराये। यह पत्र उन्हेंभी पढ़ा दीजिएगा।

आपका सस्नेह

किशोरलाल मशरूवाला

बापा के अथाह प्रेमपूर्ण हृत्सरोवर का दर्शन किशोर-लाल भाई ने समय-समय पर बहुत नज़दीक से किया था। सचमुच बापा का प्रेम विभिन्न प्रान्तों व सम्प्रदायों की सीमाओं से बहुत परे था। राष्ट्र के विभाजन के परिणामस्वरूप जहाँ मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर हुए जुल्मों को देखकर बापा को गहरी चोट लगी थी, वहाँ बदले की भावना से प्रेरित होकर एक-दो जगह मुसलमानों पर हिन्दुओं द्वारा की गई ज्यादतियों को सुनकर उनका हृदय उतनाही व्याकुल हो गया था। अकाल, बाढ़ और संक्रामक बीमारी फैल जाने की खबर पाते ही वह वहाँ

गरुड़-वेग से पहुंच जाते थे, और बिना किसी भेद-भाव के सभी पीड़ितों को अपनी करुणा की प्रसादी देते हुए एकसमान सबकी सेवा करते थे। ऐसा था बापा का अथाह और असीम हृदय-सरोवर।

यह जानते हुए भी कि बापा के सुविशाल हृत्सरोवर के सामने मेरा हृदय तो एक सीप के समान भी नहीं है, हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष के आदेश से मैं संघ का मंत्री बन गया,—केवल इस लोभ से कि इसी बहाने देश के हरेक कोने में जाकर बापा का यशोगान करता हुआ उनका तथा बापू का संदेश सुनाने का मुझे खासा अच्छा मौका मिलेगा।

श्रद्धेय किशोरलाल भाई ने जब सुना कि मैंने इस बहुत बड़ी जिम्मेदारी को अपने दुर्बल कंधों पर उठा लिया है, तब २६ जनवरी, १९५१ के पत्र में मुझे ये दो पंक्तियाँ लिखीं :—

प्रिय वियोगी हरिजी,

'आप पूज्य बापा के विशेष काम को भी सँभालेंगे, इस आश्वासन से सुख हुआ। मेरे योग्य काम कभी भी फरमा सकते हो।'

सस्नेह

किशोरलाल

: १४ :

दुर्बल कन्धों का बल

पूज्य विनोबाजी का दर्शन मैंने पहले-पहल शायद १९३५ के सितम्बर या अक्तूबर मास में किया था, जबकि वह लाहौर जाते हुए डेढ़ दिन दिल्ली के हमारे 'हरिजन-निवास' में ठहरे थे। उन दिनों वह अधिकतर अपने आप-में ध्यानस्थ से रहते थे। बात बहुत कम करते थे। हमारे अनुरोध करने पर हम कार्यकर्त्ताओं के बीच में उन्होंने हरिजन-सेवा पर प्रार्थना के पश्चात् एक अच्छा प्रेरणा-दायक प्रवचन किया था, जिसमें भक्ति और उपासना में क्या भेद है इसपर संक्षेप मे प्रकाश डाला था। उनकी ध्यानस्थ गम्भीर मुद्रा को देखकर प्रश्न पूछते हुए कुछ डर-सा लगता था, फिरभी उनकी ओर सहज आकर्षण तो हुआ ही। तबसे विनोबाजी के प्रति मेरे हृदय में जो श्रद्धा-भावना अंकुरित हुई वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई।

'भूदान-यज्ञ' का अलौकिक अनुष्ठान जिस दिन विनोबाजी ने आरम्भ किया, 'चरैवेति' इस मंत्र को अपने जीवन में उतारा उस दिन से उनके अन्तर का प्रसाद फूट पड़ा। दूर-दूर रहनेवाले हम जैसों का डर जाता रहा।

पूज्य बापा के अवसान के पश्चात् हरिजन-सेवक-संघ का मंत्री जब मुझे नियुक्त किया गया, तब मैंने विनोबाजी को एक छोटा-सा पत्र लिखा था। उसमें उनका आशीर्वाद माँगा था। उत्तर उन्होंने तीन पंक्तियों में, ७ फरवरी, १९५१ को, मुझे इस प्रकार परंधाम पवनार से दिया :—

श्री हरिजी,

आपने लिखा कि बापा के महान् कार्य का कुछ भार आपके दुर्बल कंधों पर आया है। इसी तरह दुर्बल कंधे बलवान बना करते हैं। आपको भी यही अनुभव आयेगा ऐसी मैं उम्मीद करता हूँ।

विनोबा के
प्रणाम

मैं नहीं जानता कि मेरे कन्धों में उतनी बड़ी जिम्मेदारी का भार उठा लेनेलायक बल आ सका, पर ऐसा अवश्य लगता है कि सत पुरुषों का मगल आशीर्वाद कभी विफल नहीं जाता। इतना ही कह सकता हूँ कि आठ वर्ष के इस काल मे भारत के वास्तविक चित्र के कुछ अंश को देखने का संयोग जो मुझे मिला और आजभी मिल रहा है उससे मुझे अपने जीवन में निस्सन्देह एक अपूर्व लाभ हुआ।

: १५ :

भूदान-यज्ञ और हरिजन

भारत के संविधान में अस्पृश्यता को एक अपराध क़रार देने के बावजूद व्यावहारिक रूप से अस्पृश्यता

दस साल पहले हिन्दू-समाज मे काफी मात्रा में मौजूद थी, और आजभी कहीं कम तो कहीं ज्यादा, किसी-न-किसी रूप में, वह सुनने और देखने मे आती है। मैंने एक पत्र द्वारा विनोबाजी का ध्यान अस्पृश्यतासंबंधी दो-तीन घटनाओं पर अक्टूबर, १९५१ में खींचा था। मेरे उस पत्र का जवाब सासनी, ज़िला अलीगढ़, से ५ नवम्बर, १९५१ को उन्होंने इस प्रकार दिया :—

श्री हरिजी,

बावजूद इसके कि हमारे संविधान ने हरिजन-परिजन-भेद मिटा दिया है, हरिजन-सेवा करने की आवश्यकता अबभी बहुत कुछ बाक़ी है, यह दुःख के साथ क़बूल करना पड़ता है।

अभी हमारी यात्रा में हम मथुरा गये थे। वहाँ मैं तो सर्वोदय-सम्मेलन में व्यस्त था, लेकिन महादेवी बहिन को इच्छा हुई वृन्दावन के दर्शन की। बहुत उत्कंठा के साथ वहाँ वह पहुँचीं, लेकिन हरिजनों के लिए मंदिर खुले नहीं थे, इसलिए वैसेही उन्हें वापस लौटना पड़ा। कितनी शरम और दुःख की बात है! लेकिन इससे भी अधिक दुःख की बात तो यह है कि इस दिशा में बहुत-कुछ काम करने को बाक़ी है, इसका भानही हम भूल गये हैं।

मैं आजकल भूमिदान-यज्ञ में लग गया हूँ, लेकिन उसमे भी हरिजनों को नहीं भूला हूँ। भूलभी कैसे सकता हूँ, जबकि मैं खुद अपनी इच्छा से और कामों से हरिजन बन चुका हूँ ? जो भूमि दान में मिलेगी उसके वितरण में हरिजनों का खास ध्यान रखा जाये ऐसा सोचा है, क्योंकि बहुत सारे हरिजन भूमिहीन होते ही हैं। इस दृष्टि से भूमिदान-यज्ञ के प्रचार में सारे हरिजन-सेवकों की मदद की अपेक्षा मैं कर रहा हूँ।

विनोबा के

प्रणाम

हरिजन-कार्य की ओर विनोबाजी का ध्यान खींचकर मुझे लगा कि मैंने अनजान में जैसे कुछ अविनय का काम कर डाला। जिस शख्स ने अध्यात्म के महारस में डूबकरभी हरिजनों का सदाही ध्यान रखा, उसे इस बात की याद दिलाना कि वह हरिजनों को भूल न जाये, सचमुच मेरी गुस्ताखी ही थी।

विनोबाजी ने भूमि-दान-यज्ञ के आरोहण में समस्त हरिजन-सेवकों की मदद की जो अपेक्षा की थी उसपर आंशिक रूप में ही विचार किया गया, जितना वह चाहते थे उतना नहीं, यह दुःख के साथ हमें मानना पड़ता है।

: १६ :

कूप-दान और हरिजन

ऊपर के इस पत्र को मिले दो वर्षभी नहीं हुए थे कि मैंने फिर एकबार विनोबाजी का ध्यान हरिजन-समस्या पर खींचने की धृष्टता की। ८ जुलाई, १९५३ को मैंने निम्न पत्र उनको लिखा:—

पूज्य विनोबाजी,

मुझे यह जानकर बड़ा आनन्द होता है कि जनक, बुद्ध और महावीर की जन्मभूमि बिहार में आपकी तप-

इचर्या बहुत सफल हो रही है। निस्सन्देह, इस सफलता में भगवान् का हाथ है। पर मैं तो अपने ही दाव की तरफ हमेशा देखता हूँ, 'सूझइ जुआरिहि आपन दाऊ'। भूदान-यज्ञ में यद्यपि मैं नगण्य-सा समय और शक्ति दे पाया हूँ, फिरभी हिस्सा-बाँट में संकोच नहीं करूँगा। हमारे हरि-जनों को यज्ञ में प्राप्त भूमि का तीसरा भाग मिलेगा, आप-का यह संकल्प मुझे सदा आह्लादित करता रहता है।

बिहार में तो आप जानते ही हैं, कि अधिकांश खेतिहर मजदूर हरिजन ही हैं, जो प्रायः सभी खेती के लिए भूमि चाहते हैं। मुझे पता नहीं कि बिहार में भूमि का वितरण अभी शुरू हुआ है या नहीं। यदि शुरू हो गया है, तो हरिजनों को अवश्य भूमि का तृतीयांश मिला होगा और मिलेगा। आपको इस बात का स्मरण दिलाना-भी एक प्रकार की धृष्टता है। यह तो मैं अपनी जानकारी के लिए ही लिख रहा हूँ।

भूदान के साथ-साथ आपने 'कूप-दान' की भी चर्चा की है। सिद्धान्त-रूप से तो सार्वजनिक कुएँ ही हरिजनों के लिए सर्वत्र खुल जाने चाहिएँ। अस्पृश्यता-निवारण की दिशा में वांछनीयभी यही है। किन्तु आम आबादी के देहातों में, जहाँ हरिजनों की बस्तियाँ ज्यादा फासले पर हों, वहाँ उनके लिए तात्कालिक जलकष्ट-निवारणार्थ कुछ

3.

कुएँभी बनवाना आवश्यक है। कहीं-कहीं पर सरकार की तरफ से ऐसे कुएँ बनवाये गये हैं। हरिजन-सेवक-संघ ने भी यथासाधन थोड़े-से कुएँ कहीं-कहीं पर बनवाये हैं। यदि कूप-दान की प्रवृत्ति ऐसी हरिजन-बस्तियों में योग दे सके, तो उनका जल-कष्ट कुछ अंशोंतक दूर हो जायेगा। यदि आप उचित समझें, तो इस प्रकार का संकेत कृपाकर क्या अपने किसी प्रार्थना-भाषण में कर देंगे? कदाचित् इसपर कभी आपने कहाभी हो, जिसका मुझे पता नहीं।

मेरे इस पत्र का उत्तर विनोबाजी ने तुरन्त ११ जुलाई, १९५३ को इस प्रकार दिया :—

श्री हरिजी,

आपका ८ जुलाई, १९५३ का पत्र मिला। आपने अपनाही दाव देखा ऐसा आप लिखते हैं, लेकिन यह मेरा-भी दाव है। बिहार में भूमि बाँटने में अभी देर है। उत्तर प्रदेश और हैदराबाद में बँट रही है। वहाँ कम-से-कम एक तिहाई जमीन हरिजनों को दी जा रही है। कूप-दान की कुछ चर्चा मैंने छेड़ी तो है, पर यह सिंचाई के लिए है, याने जो जमीन दान में मिलेगी, उसमें कुएँ बनवाने की बात है।

मेरा शरीर आजकल ठीक काम दे रहा है।

विनोबा के

प्रणाम

: १७ :

काशी-विश्वनाथ की 'क़ैद' और बदरीनाथ की 'रिहाई'

मैंने जुलाई, १९५५ में काशी-विश्वनाथ की उलझी

हुई मंदिरबंदी के बारे में पूज्य विनोबाजी को लिखा था कि वह काशी-विश्वनाथ के मंदिर में हरिजनों के प्रवेश-निषेध की चर्चा यदि अपने प्रार्थना-प्रवचनों में समय-समय पर करते रहें, तो उससे हमारे आन्दोलन को बहुत बल मिलेगा। उस पत्र में मैंने यहभी लिखा था कि बदरीनाथ-धाम में हमारी हरिजन-उद्योगशाला के विद्यार्थियों तथा कार्यकर्त्ताओं ने बिना किसी विरोध के प्रवेश करके भगवान् के दर्शन हाल में ही किये हैं, यह हर्ष की बात है।

इस पत्र का उत्तर विनोबाजी ने ग्राम कोरियाशाही, कटक, से ३ अगस्त, १९५५ को यह दिया:—

श्री हरिजी,

आपका पत्र मिला था। मैंने एक प्रार्थना-प्रवचन में बदरीनाथ की 'रिहाई' और काशी-विश्वनाथ की 'क़ैद' के विषय में कहाभी था। वैसे, हमारी यात्रा में जहाँ-तहाँ हरिजनों के बारे में कहा ही जाता है।

ज़मीन का बहुत बड़ा हिस्सा बिहार में हरिजनों में ही बँटा है। मैं जानता हूँ कि जब उनका ज़मीन से संबंध जुड़ जायेगा, वे सीधे खड़े रह सकेंगे।

विनोबा के
प्रणाम

: १८ :

'संत-सुधा-सार' की प्रस्तावना

स्वसम्पादित 'सन्त-सुधा-सार' की छोटी-सी प्रस्तावना लिख देने के लिए मैंने पूज्य विनोबाजी से बड़े संकोचपूर्वक प्रार्थना की थी। मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर उन्होंने अच्छी विश्लेषणात्मक प्रस्तावना दस-बारह दिन बाद भेजदी। दो-तीन स्थानों पर कुछ शाब्दिक हेरफेर कर देने के लिए मैंने उनको पुनः एक पत्र लिखा और एक-दो सुझावभी उनके विचारार्थ भेजे।

प्रस्तावना में विनोबाजी ने शंकराचार्य की विष्णु-भक्ति का उल्लेख करते हुए लिखा, था, "लोगों का खयाल है कि रामानुज वैष्णव थे, पर शायद शंकर वैष्णव नहीं थे। यह ग़लत है। बल्कि जहाँ-जहाँ शंकर प्रतीक-उपासना का दृष्टान्त देते हैं, 'शालग्रामे इव विष्णुः' ऐसाही देते हैं और भाष्य उन्होंने लिखा है भगवद्गीता पर, जो कि एक वैष्णव-ग्रन्थ है।"

भगवद्गीता के साथ 'विष्णु-सहस्रनाम' को भी मैंने यह समझकर जोड़ दिया कि इस स्तोत्र पर भी शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है।

विनोबाजी ने, चाण्डील, बिहार, से निम्न उत्तर दिया :—

'श्री हरिजी,

१-२-५३ का पत्र मिला। आपने प्रस्तावना में जो भाषासम्बन्धी परिवर्तन किये, वे मैंने देख लिये हैं। जो फर्क किया वह ठीक है।

"झंखना" के लिए "आतुरतापूर्वक रटन" इतना लम्बा अर्थ करना पड़ा। ऐसे अच्छे-अच्छे शब्द दूसरी भाषा के हमें हिन्दी में पचा लेने चाहिए। ब्रेकिट में अर्थ दे सकते हैं।

'विष्णु-सहस्रनाम' आपने जोड़ दिया यह मेरे विचार के तो अनुकूल ही है। लेकिन कुछ इतिहास-संशोधक वह भाष्य शंकराचार्य का हो, इसमें शंकित है।

'सन्त-सुधा-सार' मेरे-जैसे के लिए बहुत उपयोगी चीज है। मैं उससे भी कोई छोटी चीज चाहता हूँ। मेरी नजर के सामने अंग्रेजी की 'गोल्डन ट्रेजरी' आती है। वैसी 'ट्रेजरी' हमें हिन्दुस्तान की हरेक भाषा की मिल जाये तब कितना अच्छा होगा।

विनोबा के
प्रणाम

मेरे कृतज्ञतापूर्ण आनन्द का पार नहीं था, जो 'संत-सुधा-सार' की प्रस्तावना लिखने का अनुग्रह संतवर विनोबा ने किया।

: १९ :

एक स्पष्टीकरण :

दबाव के लिए स्थान नहीं

भूदान-आन्दोलन के सम्बन्ध में ७ मार्च, १९५५ को विनोबाजी को एक पत्र लिखकर, मुझे लगता है, मैंने कुछ धृष्टताही की थी। पर उस पत्र में मैंने जो बात लिखी उसे यदि न लिखता, तो वहभी शायद उचित न होता। मैंने लिखा था :—

"पूज्य विनोबाजी,

आज जिस सम्बन्ध में मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ, उसके बारे में काफी सोचा और इस असमंजस में रहा कि लिखूँ या न लिखूं, पर अन्त में लिखनाही उचित समझा।

एक-दो मित्रों से सर्वोदय और भूदान पर चर्चा हुई, तब यह बात सामने आई कि सम्पत्ति-दान और साधन-दान के सिलसिल में जब कुछ भूदान-कार्यकर्त्ता एक शहर में कुछ लोगों के पास गये तब एक-दो जगह उन्होंने कुछ दबाव-भी डाला, जिसे वे लोग प्रेमपूर्वक किया गया हृदय-परिवर्तन का तरीक़ा नहीं मानते हैं। संभव है कि इसमें कुछ ग़लत-फहमी रही हो। पर कुल मिलाकर कुछ लोगों पर ऐसा

असर पड़ा कि भूदान के विस्तार के साथ-साथ कछ ऐसी स्थिति आ रही है या आगे आ सकती है, जिससे यह आन्दोलन एक ऐसे संगठन का रूप लेले, जिसमें वे खरा-बियाँ प्रवेश कर सकती हैं, जिनको मिटाने के लिए यह आन्दोलन चलाया गया है। मुझे उन मित्रों ने रोका है कि मैं उनके नामों का उल्लेख न करूँ। मैं समझता हूँ कि यदि इस प्रकार का कोई वातावरण कहीं पर बन रहा हो या बनने की आशंका हो तो उससे आप बेखबर नहीं होंगे। आप अपने प्रवचनों में तो बराबरही इस बात पर ज़ोर देते आ रहे हैं कि हृदय-परिवर्तन की इस प्रवृत्ति में किसीभी प्रकार के दबाव के लिए स्थान नहीं है।

भूदान-यज्ञ के महान् आंदोलन को यथार्थ रूप से समझने के लिए, मुझे लगता है कि, बड़े-बड़े जमींदारोंतक तो आपके विचार कुछ हदतक पहुँचे हैं, परन्तु व्यापारी-वर्गतक और इसी प्रकार सरकार के अधिकारीवर्गतक जिस तरह भूदान के विचार पहुँचने चाहिए, वैसे नहीं पहुँच पाये हैं। यह और अधिक स्पष्ट हो जाना चाहिए उद्योगपतियों और व्यापारियों के प्रतिनिधियों के साथ समय-समय पर मिलकर कि भूदान की प्रवृत्ति में दबाव के लिए बिलकुल स्थान नहीं है और न उस प्रकार का चन्दा जमा किया जाता है जैसा कि चुनाव आदि के लिए राज-

नीतिक पक्ष चन्दा जमा करते हैं।

अबकी बार पुरी के सम्मेलन में आने का विचार कर रहा हूँ। लगातार चार हरिजन-कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण-शिविर हमने हरिजन-सेवक-संघ की ओर से चलाये हैं। पाँचवाँ शिविर ११ मार्च को हरिजन-निवास, दिल्ली में शुरू होगा। प्रार्थना है कि हमारे शिविर के लिए आप कृपाकर अपना आशीर्वचन भेजदें, जिससे हम सबको बल मिलेगा।

विनीत

वियोगी हरि

११ मार्च, १९५५ को मेरे उक्त पत्र का उत्तर पूज्य विनोबाजी ने यह दिया :—

श्री हरिजी,

आपका पत्र मिला। दबाव के लिए कोई स्थान हमारे आंदोलन में नहीं है यह बात मैं इतनी दफा कह चुका हूँ कि कह सकते हैं कि वह मेरा रामनाम ही हो गया है।

एक नगर की जो बात आपके पत्र में है उसकी कोई खबर मुझको नहीं है। उद्योगपति, व्यापारी आदि के प्रतिनिधि जोभी मुझसे मिलना चाहें, खुशी से मिल सक्ते हैं।

विनोबा के

प्रणाम

: २० :

मार्ग-दर्शन चाहा : अस्पृश्यता-निवारण संतों के मार्ग से

पण्ढरपुर के सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर मैंने विनोबाजी के साथ अस्पृश्यता-निवारण-कार्य के बारे में खासी तफसील के साथ चर्चा की थी। हृदय-परिवर्तन की अहिंसात्मक प्रक्रिया को मुख्य साधन मानते हुए यहभी मैंने कहा था कि कुछ कठिन प्रसंगों पर हमने अस्पृश्यता (अपराध) क़ानून का भी प्रयोग किया है, इस बात का खासतौर पर ध्यान रखते हुए कि क़ानून के प्रयोग से सवर्णों और हरिजनों के बीच कटुता की भावना न बढ़े।

इस चर्चा के बाद वहीं पर एक छोटा-सा पत्र विनोबाजी को मैंने लिखा था, जिसमें दो बातों में उनका मार्ग-दर्शन चाहा था । एक प्रश्न तो मेरे सामने पिछले कुछ दिनों से यह था कि हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री-पद का दायित्व निभाने के साथ-साथ अस्पृश्यता-उन्मूलन का विचार-प्रचार उतना मैं शायद नहीं कर पा रहा हूँ, जितना कि करना चाहता हूँ इसलिए क्या उक्त पद की जिम्मेदारी से मैं मुक्त हो जाऊँ । दूसरी बात पूछने की यह थी कि हमारे अनेक सन्तों ने हमें जो मार्ग दिखाया है, अर्थात् सर्व-कल्याण की अलख जगाते हुए सभीको एकसमान प्रेम, मैत्री, करुणा और सेवा का प्रसाद बाँटते हुए, ग्राम-ग्राम में पैदल भ्रमण करना, उस मार्ग को अस्पृश्यता-निवारणार्थ अधिक महत्त्व देकर यदि हरिजन-सेवक-संघ अपनाये तो कैसा होगा ?

मेरे इस पत्र का उत्तर बड़गांव (महाराष्ट्र) के पड़ाव से १३ जून, १९५८ को विनोबाजी ने यह दिया:—

श्री हरिजी,

पण्ढरपुर के सम्मेलन में आपने पूछा था, उसपर मैंने चिंतन किया ।

हमारा काम सन्तों ने जो राह अखत्यार की थी उसी राह से होगा, यह आपका निर्णय मुझे योग्य लगता

हैं। हर हालत में समग्र दृष्टि और कारुण्यपूर्ण समत्व-ही हमारा लक्ष्य होगा।

इसके अमल में जिस स्थान पर अभी (आप) हैं वहाँ रहने से अगर कोई बाधा पहुँचती हो, तो उस स्थान से मुक्त होने में मैं दोष नहीं मानूँगा। लेकिन उसके अमल में अगर कुछ विशेष बाधा न पहुँचती हो, तो उस स्थान पर रहना चाहिए। अब इसका निर्णय आपको करना है।

विनोबा का जय जगत्

वह निर्णय, अन्त में, सब सोच-समझकर मैंने कर लिया। १९५९ के जून में संघ के मंत्रि-पद से मैं मुक्त हो गया, किन्तु अस्पृश्यता-निवारण-कार्य से मुक्त नहीं। चाहने पर भी तबतक मुक्त हो नहीं सकता—होना भी नहीं चाहिए—जबतक कि अन्तर में मानवीय समता का सुखद स्वप्न साकार नहीं हो जाता। अपने आपकी ओर देखता हूँ तो लगता है कि वह दिन शायद अभी बहुत दूर है। तपःसाधना की वैसी पूँजीभी पास में नहीं। तोभी निराश होने का कोई कारण नहीं। जो सहज स्वाभाविक है, वह होकर रहेगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि स्वाभाविक तो समताही है, विषमता नहीं।

: २१ :

अन्याय को प्रश्रय न दो

श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टंडन का प्रथम दर्शन सन् १९१८ में प्रयाग में हुआ था। आरा-निवासी, प्रेम-साहित्य के कलात्मक प्रकाशक स्व० देवेन्द्रकुमार जैन ने

टंडनजी से वहाँ मेरा परिचय कराया था। 'सूर-सागर' का संक्षिप्त सटिप्पण संकलन करने का कार्य टंडनजी ने मुझे सौंपा, जिसे डरते-डरते मैंने हाथ में लिया। उसके बाद उन्हींके स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन से मैंने 'ब्रज-माधुरी-सार' का सम्पादन किया। 'शिवा-बावनी' तथा एक-दो और छोटी-छोटी पुस्तकों का और उसके बाद 'सम्मेलन-पत्रिका' का भी सम्पादन टंडनजी के ही आदेश से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशनार्थ मैंने किया था। इस प्रकार कुछही दिनों में बाबूजी का आत्मीय स्नेह पाकर सम्मेलन का ही नहीं, उनके अपने घर का भी मैं सद्‌भाग्य से एक अभिन्न अंग बन गया।

मेरे स्वभाव में एक चीज़ रही है, जिसे शायद दोषभी कहा जा सकता है। वह यह कि जिनसे अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहा, उनके साथ पत्र-व्यवहार मेरा बहुत कम हुआ है। टंडनजी ने,—और मैंने तो शायद औरभी कम—सन् १९१९ से आजतक, चालीस वर्षों में मुश्किल से आठ या दस पत्र लिखे होंगे। आज मेरे पास उनके पाँच-छह हो पत्र हैं, जिनमें से पूरे या आंशिक रूप से उदधृत करने-जैसे तो केवल चार पत्र हैं। किन्तु वे पत्र ऐसे हैं, जिनसे मुझे तो अपने जीवन में प्रेरणा मिली ही, दूसरों को भी वह मिल सकती है।

समझौते में अनौचित्य

एक पत्र २ जुलाई, १९४५ का है। 'वेवेल-योजना' एवं 'भूलाभाई-लियाकतअली-समझौते' के बारे में मैं टंडनजी की राय जानना चाहता था। यद्यपि राजनीतिक प्रश्नों में मैं बहुत करके सदा तटस्थ ही रहा, तथापि उक्त योजना तथा उस समझौते के बारे में टंडनजी के अपने खुद के क्या विचार हैं यह जानने को मन हो रहा था। मेरे पत्र के उत्तर में, कुछ निजी बातों के अलावा, टंडनजी ने लिखा :—

प्रिय हरिजी,

नमस्कार।

'वेवेल-योजना' पर मैंने अपनी सम्मति प्रकाशित नहीं की, किन्तु उसके प्रकाशन से चार-पाँच दिन पहले मैंने 'भूलाभाई-लियाकतअली-समझौते' पर एक तीव्र आलोचना प्रेस को दी थी। वह प्रकाशित हुई है। उसमें मैंने कांग्रेस और मुसलिम लीग को बराबर स्थान देने के विचार को अनुचित कहा था। यहभी मैंने कहा था कि हिन्दू-महासभा और मुसलिम लीग का तो बराबरी का दर्जा हो सकता है, लेकिन कांग्रेस दोनों से ऊपर है, और

उसे ऊपर रहना चाहिए। तबतक यह बात प्रकट नहीं हुई थी कि गांधीजी का स्वयं इस समझौते के पीछे हाथ है। किन्तु इसके प्रगट होने से मरे मत में तो कोई अन्तर नहीं हुआ। मैं तो इस काम का ऐतिहासिक अनौचित्य देखता हूँ। मुझे इसमें हिंदुओंके साथ भारा अन्याय दिखाई दे रहा है। मुझे यहभी मालूम हुआ है कि वर्किंग कमेटी के सदस्य जब जेल में थे, उन्हें यह योजना पसन्द नहीं आई थी। किन्तु बात इतनी दूर चली गई है कि अब वे किये हुए से हट नहीं सकते।

इस समय का समझौता अस्थायी प्रबन्ध के लिए है। फिरभी राजनीति में एक नये प्रकार का विष आ गया है। स्थायी योजना में इस विष का प्रभाव अधिक न पड़ने पाये, यह अबभी सम्भव है ......

सस्नेह

पुरुषोत्तमदास टंडन

ऊपर के इस पत्र में टंडनजी के मानस को साफ़ देखा जा सकता है। आगे चलकर देश के जो दो टुकड़े हुए, उस राजनीतिक दुर्घटना का अंदेशा उनको पहले से ही था। उनको उससे असह्य आघात पहुँचा। ऐसे किसी-भी राजनीतिक समझौते या निर्णय में टंडनजी ने शक्ति का अभाव देखा।

भविष्य के संबंध में संघर्ष

भूदान के देशव्यापी आन्दोलन से प्रभावित होकर मैंने कई बार सोचा था कि टंडनजी यदि अपनी अधिक-से-अधिक शक्ति भूदान में लगाकर विनोबाजी को सक्रिय सहयोग दें, तो देश के हित में वह एक बहुत बड़ा काम होगा। कांग्रेस को, उसके अध्यक्ष रहते हुए, जिन सिद्धांतों और कार्यक्रम की तरफ टंडनजी ले जाना चाहते थे, वह संभव नहीं हो पा रहा था। एक विचित्र-सी स्थिति पैदा हो गई थी। मैं यह जानता था कि भूदान-कार्य के प्रति टंडनजी की रुचि तो है, और उसे वह अपना थोड़ा-बहुत समय भी देते हैं, पर सोचता था कि वह अधिक-से-अधिक समय और शक्ति भूदान को दे सकें तो कितना अच्छा हो। इसी विचार से १३ जुलाई, १९५३ को मैंने जो पत्र उनको लिखा था, उसका उत्तर उनके १६ जुलाई के पत्र में इस प्रकार मिला :—

प्रिय हरिजी,

नमस्कार।

मैं अभी लगभग एक घंटे के भीतर घर पर पहुँचा

हूँ। कर्वी और बांदा भूमिदान के काम से गया था। घर पर पत्रों में तुम्हारा १३ तारीख का पत्र मिला। तुम्हारा पहले का पत्रभी मिल गया था और मैं तुम्हें लिखनेही वाला था।

बांदा ज़िले में जाने से पहले सुलतानपुर और रायबरेली ज़िलों में भी भूमिदान के काम से गया था। इलाहाबाद ज़िले की भूमिदान समिति का भी कुछ काम रहा। मैं विशेष बल भूमिदान में मिली भूमि के बँटवारे और अपनी 'वाटिकागृह-योजना' पर दे रहा हूँ। इस यत्न में हूँ कि कई ज़िलों में 'वाटिका-गृह-योजना' के सिद्धान्त पर आदर्श ग्राम बसाये जायें, जिनके प्रत्येक कुटुम्ब का निवास-स्थान आधी एकड़ भूमि में हो। विनोबाजी की इच्छा के अनुसार मैं उत्तर प्रदेश की भूमिदान-समिति का अध्यक्ष हो गया हूँ।

कांग्रेस की स्थिति देश के लिए आज सहायक नहीं है, अथवा नहीं के बराबर है। मेरे मन में संघर्ष है,भविष्य के सम्बन्ध में . . . .

अभी अधिक काम न करना (मुझे चार मास पहले दिल का दौरा हुआ था) मैं ३१ जुलाई को दिल्ली संभवतः पहुँचूँगा।

सस्नेह

पुरुषोत्तमदास टंडन

: २४ :

सिद्धान्त की रक्षा

अपने सिद्धान्त की रक्षा की खातिर एक मिनिट के अन्दर कांग्रेस के अध्यक्ष-पद पर से टंडनजी जब हटे,

तो उनके साथ कुछ बातों से मूलभूत मतभेद रखने-वालों ने भी उनके चरित्र की निर्मलता और उच्चता को बहुत स्पष्ट रूप में देखा । उनके सम्मुख वे नत-मस्तक हो गये । किन्तु टंडनजी के लिए वह कोई बड़ी चीज नहीं थी । कोईभी पद उनके लिए कभी प्रलो-भन की वस्तु नहीं बन सका । नैतिकता पर, एक चट्टान की तरह, वह सदैव दृढ़ रहे । असत्य और अनीति के साथ किसीभी क़ीमत पर कभी उन्होंने समझौता नहीं किया । अपनी फटी कम्बली को बहुमूल्य दुशाल से भी कहीं अधिक मूल्यवान् समझा । जिन पदों से मरते दम तक चिपटे रहने में बहुतों ने सुख माना, उनको टंडन-जी ने स्वप्न में भी लालच की दृष्टि से नहीं देखा ।

सिद्धान्त के लिए बड़े से बड़ा त्याग

श्रीजवाहरलाल नेहरू ने टंडनजी को उड़ीसा का राज्यपाल बनाना चाहा था । कई मित्रों ने सलाह दी कि वह उस पद को स्वीकार करलें, पर उनका मन उसे स्वीकार करने को नहीं बोल रहा था । किन्तु राज्यपाल का पद स्वीकार कर लेने की मैंने, जब टंडनजी दिल्ली में थे, सलाह नहीं दी थी । मैं जानना चाहता था कि श्रीजवाहरलालजी को उन्होंने इस बारे में क्या जवाब भेजा है ।

१६ जनवरी, १९५४ को प्रयाग से टंडनजी ने मुझे लिखा :—

प्रिय हरिजी,

नमस्कार।

राज्यपाल-पद के लिए जो तुमसे दिल्ली में बात हुई थी, उसपर विचार करता रहा। स्वीकृति का पत्रभी लिखने बैठा, परन्तु हृदय ने बलवा कर दिया, और अन्त में अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उस पद की स्वीकृति से मैंने क्षमा माँगी। यह पत्र मैंने ५ तारीख को श्री-जवाहरलाल नेहरू को यहाँ से भेज दिया।

सस्नेह

पुरुषोत्तमदास टंडन

जो पत्र टंडनजी ने ६ जनवरी को जवाहरलालजी को लिखा था, उसकी एक प्रतिलिपि मुझेभी उन्होंने भेजी थी। वह यह है :—

"प्रिय जवाहरलाल,

नमस्कार।

तुमने जो यह प्रस्ताव २६ दिसम्बर को किया था कि उड़ीसा के राज्यपाल-पद पर मैं काम करूँ, उसका उत्तर जाने में कुछ देरी हुई है। अधिकतर बाहर रहा हूँ। कल रात बांदा से लौटा, क्षमा माँगता हूँ।

तुम्हारे प्रस्ताव के बारे में मेरे मन में यह संघर्ष रहा है कि उन कामों मे कुछ हटकर, जिनमें मैं लगा हूँ, क्या राज्यपाल-पद पर मेरी उपयोगिता होगी। अन्त में मेरा हृदय यह कहता है कि तुम्हारी उदारता के प्रति कृतज्ञ होते हुए भी मैं इस पद को न लेने के लिए तुमसे क्षमा मांगूँ।

सस्नेह

पुरुषोत्तमदास टंडन"

किसी पद पर रहना तभीतक टण्डनजी ने आवश्यक और उचित समझा, जबतक कि उसपर रहते हुए अपने सिद्धान्त की रक्षा करने में उनके सामने कोई वाधा नहीं आई। न तो उनके पक्ष में प्राप्त बहुमत का बल उनको कभी लुभा सका, और न किसीके दबाव से वह कभी एक क़दम पीछे हटे। जब यू० पी० की विधान सभा में वह स्पीकर थे, तबका एक प्रसंग उनके उज्ज्वल त्याग और अमंद तेजस्विता का स्मरण आजभी दिला रहा है।

विरोधी-दल के एक सदस्य ने विधान-सभा में १९ जनवरी, १९३८ को एक स्थगन प्रस्ताव (एडजर्नमेंट मोशन) इस प्रश्न पर बहस करने के लिए रखा था कि यह कहाँतक उचित है कि विधान-सभा का अध्यक्ष

(स्पीकर) अमुक राजनीतिक दल के कामों में हिस्सा ले। टंडनजी ने इस प्रस्ताव पर उस दिन विधान-सभा में जो निर्णय दिया, वह सदा स्मरणीय रहेगा। उन्होंने कहा:—

"मेरे पास एक एडजर्नमेंट मोशन (स्थगन प्रस्ताव) का नोटिस आया है। एडजर्नमेंट मोशन क्या चीज है यह उन मेम्बर साहबान को भी, जो अंग्रेजी नहीं जानते हैं, मालूम होना चाहिए। इसमें यह कहा गया है कि राजनीति में स्पीकर के हिस्सा लेने के मसले पर गौर करना जरूरी है। मुझे तो बहुत खुशी होती, अगर इस मसले पर यहाँ बहस होती। लेकिन मैं यह समझता हूँ कि महज इसलिए कि यह मसला मेरे बारे में है इसपर बहस करने की इजाजत देना ठीक नहीं होगा। इससे आइन्दा के लिए गलत रास्ता खुल जायेगा कि स्पीकर के बारे में यहाँ बहस हो। मेरा खयाल है कि लारी साहब भी अच्छी तरह से क़ायदों से वाकिफ होंगे कि स्पीकर के बारे में कोई एडजर्नमेंट मोशन नहीं लाया जा सकता। लारी साहब बहुत होशियार आदमी हैं। उन्होंने कुछ समझकर ही यह मोशन दिया होगा। राजनीति में बहुत-सी ऐसी बातें होती हैं, जिनकी वजह से उन्होंने यह तजवीज देना मुनासिब समझा। मेरी राय है कि स्पीकर का मसला एडजर्नमेंट का विषय नहीं हो सकता, इसलिए मैं इस तज-

चीज को पेश करने की इजाजत नहीं देता हूँ।

इसके साथ-साथ हमेशा से मेरी यह राय रही है कि जहाँ जिम्मेदारी का पद हो, वह सिर्फ बहुमत की ताक़त से ही नहीं लेना चाहिए। मैंने जिन्दगीभर सिर्फ बहुमत की ताक़त से किसी पद पर जाने की ख्वाहिश नहीं की है। मगर इस वक्त मौक़ा नहीं है कि मैं आपको बताऊँ कि कहाँ-कहाँ बहुमत की ताक़त पर पदों के रूप से मैंने इन्कार किया है। अपोजिशन (विरोधी-पक्ष) में मेरे इलाहाबाद के एक दोस्त मौजद हैं, जो इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए मेरे दोस्त, जो अपोजिशन में हैं, अगर यह समझते हैं कि राजनीतिक यानी सियासी मामलों में मेरा हिस्सा लेना ठीक नहीं है और साथमें यहभी समझते हैं कि मेरे राजनीति में हिस्सा लेने से मेरे ऊपर उनका भरोसा कम होता है, तो मेरा उनसे यह कहना है कि बहुमत के बल पर मैं यहाँ नहीं रहूँगा। अगर सिर्फ अपोजिशन के लोग मुझसे यह कहदें कि आप पर हमारा भरोसा नहीं है, तो मैं किसीसे पूछने नहीं जाऊँगा। आज ही मेरा इस्तीफा चला जायेगा। स्पीकरी या मिनिस्ट्री आदि छोटी चीजें हैं। अपनी आत्मा का संतोष उनसे ज्यादा क़ीमती है। मैं जिस चीज को ठीक समझता हूँ, उसको न अपोजिशन के डर से और न कांग्रेस दल के दबाव

से बन्द करनेवाला हूँ। मुल्क की जैसी हालत है उसके लिहाज से स्पीकर को राजनीति के काम में भाग लेने की इजाजत देनीही चाहिए, नहीं तो किसी तीसरे दर्जे के आदमी को यहां लाकर बैठाना पड़ेगा।

मेरी क़तई राय है कि आपको अपना नया कनवेंशन बनाना चाहिए। मैं तो अपनी राय पर क़ायम हूँ, और मैं अपोजिशन के मेम्बर साहबान से फिर कहूँगा कि मैं सिर्फ बहुमत की ताकत पर यहाँ रहना नहीं चाहता। अगर उनका मेरे में विश्वास नहीं है, तो वे काफी तादाद में मुझको एक पर्चे पर लिखकर अभी भेजदें, मैं आज-ही अपना इस्तीफा दे दूँगा।"

इसके पहलेभी ऐसा ही एक प्रसंग १ अक्तूबर, १९३७ को आया था। वहभी टंडनजी की स्पीकरी के ही सम्बन्ध का था।

विरोधी-दल को शुरू से ही यह भय था कि श्री-टंडनजी विधान-सभा के अध्यक्ष-पद पर से जो निर्णय देंगे, उन निर्णयों पर कांग्रेस-दल अपना प्रभाव डाल सकता है। पर टंडनजी तो निश्शंक थे। उनका विश्वास था कि कांग्रेस-दल कभी उनपर कोई अनुचित प्रभाव डालने-वाला नहीं, और यदि कभी वह ऐसा करेभी, तो वह उससे प्रभावित होने के नहीं, भले ही स्पीकरी उनको

छोड़नी पड़े । टंडनजी के वे उदात्त उद्गार आजभी विधान-सभा के भवन में गूँजते होंगे । उन्होंने कहा था :

"मैं सोचभी नहीं सकता कि कांग्रेस-दल, जिसमें मैं हूँ और जिसके प्रति मेरी निष्ठा है—क्योंकि मेरे विचार में उसने राजनीतिक चिन्तन और कार्य में सब देखते हुए ऊँचा स्तर प्राप्त किया है, उदाहरण भी ऊँचा रखा है—मैं यह सोचभी नहीं सकता कि वह दल एक क्षण के लिए भी यह सपना देखेगा कि मेरे अध्यक्षीय कर्तव्यों से संबंध रखनेवाले विषयों में वह मेरे ऊपर प्रभाव डाले । ऐसे विषयों में किसी राजनीतिक सम्बन्ध या राजनीतिक मत-भेद से मेरा अबाधित अन्तःकरण अकेला निर्णय करता है । पर यदि ऐसी बात हो जाय, जो सोची नहीं जा सकती, और कांग्रेस-कार्य-समिति कभी चाहे कि मेरे अध्यक्षीय काम में वह आदेश दे, तो उस दिन मेरी यह अध्यक्षता समाप्त हो जायेगी । मेरा अनुमान है कि मैंने अपने जीवन में अबतक अपने और अपने अन्तःकरण के बीच कभी तीसरे पक्ष को दखल नहीं देने दिया, और मेरी आशा है कि भविष्य में भी ऐसी सम्भावना न होगी कि मैं ऐसा करनेदूँ । जोभी मेरे कार्यों पर प्रभाव डालना चाहता है, उसे पहले मेरी सम्मति को प्रभावित और मेरे मत को

: २५ :

राजनीति के शुष्क क्षेत्र में कहाँ ?

अन्त में टंडनजी के एक पत्र में से नीचे की पंक्तियाँ उद्धृत करता हूँ, जिसमें मेरी मां का देहांत हो जाने पर उन्होंने लिखा था :—

> स्थानीय समाचार-पत्र में कल पढ़ा कि पूज्य मा जी का देहांत हो गया। मुझे दुःख हुआ। वह ऐसी स्नेहमयी थीं कि उनका स्मरणकर और यह जानकर अब उनसे भेंट न होगी, मेरे हृदय को ठेस पहुँचना स्वाभाविक है। ऐसी सरल और स्नेहमयी माताएँ ही देश की सच्ची शोभा होती हैं उनकी स्मृति में मेरी श्रद्धांजलि अर्पित है।
>
> सस्नेह
>
> पुरुषोत्तमदास टंडन

ऐसा पारिवारिक ऊँचा ममत्व, गहरा अपनापन राजनीति के शुष्क क्षेत्र में कहाँ मिलेगा ?

परिवर्तित करना पड़ेगा। मेरे लिए मेरा अन्तःकरणही ईश्वर का शब्द है, और वही मुख्य अधिकारी है, जिसके सामने मैं नमता हूँ। इस भवन के बारे में दूसरा अधिकारी, जिसके सामने मैं झुकता हूँ, स्वयं यह सारा भवन है—उन दलों में से कोई दल विशेष नहीं, जिनसे कि यह बना है।

[अंग्रेजी से अनूदित]

राजनीति के कुछ धुरंधरों का खयाल है कि अपने कुछ अजीब-अजीब सिद्धांतों से चिपटे रहने के कारण टंडनजी राजनीति के क्षेत्र में बहुत आगे नहीं बढ़ सके, न अपना कोई जोरदार गुट ही बना सके। उनका ऐसा खयाल कुछ हदतक शायद सही हो, पर मैंने तो यह माना है कि टंडनजी के स्वभाव में ही वे तत्त्व नहीं हैं जो राजनीति के क्षेत्र में तथाकथित सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक माने जाते हैं। ठीक है कि उन्होंने अपना कोई राजनीतिक गुट नहीं बनाया और न दल विशेष पर वह वैसा प्रभाव ही डाल सके। पर इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने अपने स्नेहपूर्ण हृदय में एक ऐसा परिवार बनाया और बसा लिया है, जो उनको सदा श्रद्धा-भक्ति से याद करता है और करता रहेगा।